पढ़ें और सीखें योजना

जैव-तकनीक

(बायोटेक्नोलॉजी)

राज कुमार बंसल

विभागीय सहयोग

राम दुलार शुक्ल

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
फरवरी 1990
माघ 1911
P.D. 10T— AKS

प्रकाशन सहयोग

सी० एन० राव : **अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग**

प्रभाकर द्विवेदी : **मुख्य संपादक**
आशीष सिन्हा : **संपादक**
शर्मा दत्त : **सहायक संपादक**

यू० प्रभाकर राव : **मुख्य उत्पादन अधिकारी**
डी० साई प्रसाद : **उत्पादन अधिकारी**
चंद्र प्रकाश टंडन : **कला अधिकारी**
कर्ण कुमार चड्ढा : **वरिष्ठ कलाकार**
प्रमोद रावत : **उत्पादन सहायक**

मूल्य : रु० 6.50

प्रकाशन विभाग में, सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा कपूर आर्ट प्रेस, ए 38/3 मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया फेस I, नई दिल्ली 110064 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले पच्चीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किंतु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा-प्रणाली है जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बालकों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध भी नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर वह बहुत ही नाकाफ़ी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के लेखन की दिशा में एक महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत "पढ़ें और सीखें" शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार करने का विचार है जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक

विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जाएंगी। हम आशा करते हैं कि बहुत शीघ्र ही हिन्दी में हम निम्नलिखित विषयों पर 50 पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

(क) शिशुओं के लिए पुस्तकें
(ख) कथा साहित्य
(ग) जीवनियाँ
(घ) देश-विदेश परिचय
(ङ) सांस्कृतिक विषय
(च) वैज्ञानिक विषय
(छ) सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, वैज्ञानिकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने में पहुंच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भांति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक 'जैव-तकनीक' (बायोटेक्नोलॉजी) के लेखन के लिए डा. राजकुमार बंसल ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

हिन्दी में "पढ़ें और सीखें" पुस्तक माला की यह योजना प्रो. अनिल विद्यालंकार (अवकाश प्राप्त) के मार्ग-दर्शन में चल रही थी। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूंदरा, डा. रामजन्म शर्मा, डा. सुरेश पांडेय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं।

इस योजना में विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का मार्ग-दर्शन दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति और राजस्थान विश्वविद्यालय में वर्तमान प्रोफेसर-एमेरिटस डा. रामचरण मेहरोत्रा कर रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन के संयोजन और अंतिम संपादन आदि का दायित्व हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के प्रो. राम दुलार शुक्ल वहन कर रहे हैं।

मैं डा. रामचरण मेहरोत्रा को और अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूं।

इन पुस्तकों को इतने अच्छे ढंग से प्रकाशित करने के लिए मैं परिषद् के प्रकाशन विभाग के अध्यक्ष और कार्यकर्ताओं, विशेषकर विभागाध्यक्ष श्री सी. एन. राव और मुख्य संपादक श्री प्रभाकर द्विवेदी को हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चो के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

पी. एल. मल्होत्रा
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली

आभार

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के बायोटेक्नोलोजी विभाग की सुश्री प्रो. इन्दिरा नाथ एवं उनके सहयोगियों के प्रति हम आभार प्रगट करते हैं जिन्होंने आवरण के लिए प्रयुक्त स्लाइड के लिए सामग्री अपनी प्रयोगशाला से उपलब्ध कराई। बायोटेक्नोलोजी विभाग (भारत सरकार), नई दिल्ली के प्रो. एच. के श्रीवास्तव एवं उनके सहयोगियों के प्रति भी हम आभारी है जिन्होंने पुस्तक के पिछले आवरण के चित्र के लिए उपयोगी सामग्री प्रदान की।

आवरण-चित्र परिचय

आवरण मुखपृष्ठ पर दी गई ऊपरी फोटो अनुवांशिक इंजीनियरी में प्रयुक्त होने वाले विविध पदों को प्रदर्शित करती है। इकोलाई का बैक्टीरियल उपनिवेश जिसमे प्लास्मिड में लगे विजातीय डी.एन.ए. संनिहित हैं, पेट्रीडिश मे उगाया जाता है। इसमें से डी.एन ए रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम द्वारा काटा गया है और अगरोज जेल पर इलेक्ट्रोफोरसिस द्वारा अलग किया गया है जिनके प्रतिदीप्त बैण्ड इथीडियम ब्रोमाइड रंजक के प्रयोग से देखे जा सकते हैं (**चित्र में काला आयताकार भाग**)। रेडियोलैबल्ड न्यूक्लियोटाइड के प्रयोग से डी.एन.ए., जो एक्स-रे फिल्म की लम्बी पट्टी पर एक सीढ़ी की शक्ल का आता है, के अनुक्रम को पढ़ा जा सकता है। जी.ए.टी.सी. (GATC) का अनुक्रम बाये से दायें पढ़ा जा सकता है, जैसे कोई सीढ़ी के निचले डडे से ऊपरी डंडे पर चढ़ता है।

आवरण मुख पृष्ठ के निचले भाग में दी गई फोटो रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम से काटे गये डी.एन.ए. प्रतिदर्श का अगरोज जेल में डालकर की गई इलेक्ट्रोफोरेसिस को दर्शाती है। इस अगरोज जेल को इथीडियम ब्रोमाइड (**जो डी.एन.ए. से बंध जाता हे**) से अभिरंजित किए जाने पर पराबैगनी प्रकाश के साथ लाल प्रतिदीप्ति देता है।

पिछले आवरण पर

कांच की बोतल मे बांस का गुणन (**उतक संवर्धन**)।

दो शब्द

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन. सी. ई. आर. टी.) की "पढ़े और सीखें" योजना के अंतर्गत यह एक छोटा सा प्रयास है। जब परिषद् के प्रगतिशील निदेशक डा. पी. एल. मल्होत्रा ने मुझे इस दिशा में विज्ञान के विषयों का कार्यभार संभालने के लिए आमंत्रित किया तो अपने वैज्ञानिक मित्रों की अतिव्यस्तता के कारण यह उत्तरदायित्व स्वीकार करने में मुझे संकोच था।

इस दिशा में मेरा प्रयास रहा है कि विज्ञान के विभिन्न विषयों के जाने-माने विद्वानों को इस सराहनीय कार्य के लिए आकर्षित कर सकूं। खोज और अनुसंधान की आनंदपूर्ण अनुभूतियों वाले वैज्ञानिक ही अपने आनंद की एक झलक बच्चों तक पहुंचा सकते हैं। मैं उनका हृदय से आभारी हूं कि उन्होंने अंकुरित होने वाली पीढ़ी के लिए अपने बहुमूल्य समय में से कुछ क्षण निकालने का प्रयास किया। बालक राष्ट्र की सब से बहुमूल्य और महत्वपूर्ण निधि है। मेरे लिए यह संतोष का अनुभव रहा है कि हमारे इतने लब्धप्रतिष्ठ और अत्यंत व्यस्त वैज्ञानिक बच्चों के लिए ऐसा परिश्रम करने के लिए सहर्ष मान गए हैं। मैं सभी वैज्ञानिक मित्रों के लिए हृदय से आभारी हूं।

इन पुस्तकों की तैयारी में हमारा मुख्य ध्येय रहा है कि विषय ऐसी शैली में प्रस्तुत किया जाए कि बच्चे स्वयं इसकी ओर आकर्षित हों, साथ ही भाषा इतनी सरल हो कि बच्चों को इनके अध्ययन द्वारा विज्ञान के

गूढ़तम रहस्यों को समझने में कोई कठिनाई न हो। इन पुस्तकों के पढ़ने से उनमें अधिक पढ़ने की रुचि पैदा हो, उनके नैसर्गिक कौतूहल में वृद्धि हो जिससे ऐसे कौतूहल और उसके समाधान के लिए स्वप्रयत्न उनके जीवन का एक अंग बन जाए।

यह योजना एन. सी. ई. आर. टी. के वर्तमान निदेशक डा. पी. एल. मल्होत्रा की प्रेरणा से प्रारंभ हुई है। मैं इन्हें इसके लिए बधाई और धन्यवाद देता हूं।

डा. राजकुमार बंसल ने इस पुस्तक को लिखने के लिए मेरा अनुरोध स्वीकार किया जिसके लिए मैं हृदय से आभारी हूं। परिषद् के विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के प्रो. राम दुलार शुक्ल विज्ञान की पुस्तकों के लेखन से संबंधित योजना के संयोजक हैं और बहुत परिश्रम और कुशलता से अपना कार्य कर रहे हैं। प्रो. अनिल विद्यालंकार "पढ़ें और सीखें" संपूर्ण योजना के संचालक रहे हैं। वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रो. अर्जुन देव योजना को हर सम्भव सहयोग दे रहे हैं। मैं इन सब को हृदय से धन्यवाद देता हूं।

आशा है कि ऐसी पुस्तकों से हमारी नई पीढ़ी के बाल्यकाल ही में वैज्ञानिक मानसिकता का शुभारंभ हो सकेगा और विज्ञान के नवीनतम ज्ञान के साथ ही साथ उन्हें अपने देश की प्रगतियों एवं वैज्ञानिकों के कार्य की झलक मिल सकेगी जिससे उनमें अपने राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना का भी सृजन होगा।

रामचरण मेहरोत्रा
अध्यक्ष
"पढे और सीखें योजना" (विज्ञान)

प्रस्तावना

जैव-तकनीक पर एक लघु पुस्तक लिखना एक कठिन कार्य था, क्योंकि जैव-तकनीक की कहानी शर्करा से एथानाल के संश्लेषण से प्रारम्भ होकर क्लोनिंग द्वारा इंसुलिन के संश्लेषण तक पहुंच चुकी है। प्रश्न उठता है, पुस्तक की कहानी कहाँ से प्रारम्भ की जाए? समस्या तब और कठिन हो जाती है जब लेखक पर यह भी बंधन हो कि पुस्तक का आकार छोटा हो तथा उसका स्तर 10वीं से 12वीं कक्षा के विद्यार्थियों से ऊंचा न हो। इन सीमाओं में रहते हुए मैंने विषय को संक्षेप में तथा यथासंभव सरल भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। पुस्तक का उद्देश्य विषय के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करना है न कि समस्त विषय को समझाना। इस उद्देश्य में मैं कहां तक सफल हो पाया हूँ, यह तो पाठकगण ही आँक सकेंगें।

मुझे इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा श्रद्धेय प्रोफेसर रामचरण मेहरोत्रा से मिली। प्रेरणा ही नहीं अपितु समय-समय पर मार्ग-दर्शन भी। उनकी इस सहृदयता के लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ।
प्रोफेसर ललित कोठारी ने मुझे न केवल पुस्तक के लिए सामग्री संकलित करने में सहायता प्रदान की, अपितु उन्होंने पूरी पांडुलिपि को पढ़कर उसमें संशोधन हेतु उचित सुझाव भी दिये जिसके लिये मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। मुझे डा. (श्रीमती) पुष्पा श्रीवास्तव का भी असीम

सहयोग मिला जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं। मैं प्रोफेसर आर. डी. शुक्ला के प्रति भी आभार प्रकट करता हूं जिनके आग्रह पर ही यह पुस्तक इस रूप में आ पायी।

राजकुमार बंसल
एसोसियेट प्रोफेसर, रसायन विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

विषय-सूची

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

1

विषय प्रवेश

मनुष्य की कल्पना की कोई सीमा नहीं है। जलपरियों, अर्थात् ऐसे जीव जिनका सिर व मुख तो सुन्दर स्त्रियों जैसा हो किन्तु धड़ मछली का, ऐसे प्राणी की कल्पना तो आदिकाल से ही की जाती रही है। बालकथाओं में परियों का वर्णन मिलता है जिनके बारे में कल्पना की जाती है कि वे असीम सुन्दर कन्याएं होती हैं, जिनके पंख भी होते हैं और जो उड़ा कर स्वर्गलोक ले जा सकती हैं। अलादीन के चिराग के बारे में भी हममें से कइयों ने पढ़ा ही होगा जिसके अनुसार चिराग को आज्ञा देते ही जिन्न हाजिर हो जाता है। जिन्न में जहां मनुष्य का दिमाग है वहीं उससे हजारों गुनी ताकत है, जिससे वह कोई भी काम कर सकता है।

इसी प्रकार बालकथाओं में कल्पना की जाती है कि आप स्वप्न में ऐसे उद्यान में पहुंचते हैं जहां पर आपके जाने पहचाने फलों के तो पेड़ हैं हीं, साथ ही अनेक नवीन किस्म के फलों वाले वृक्ष भी हैं। आपकी जो इच्छा हो खाइये।

चित्र 1.1 – एक काल्पनिक जलपरी

वैज्ञानिकों ने साहित्य में वर्णित अनेक कथाओं को केवल कोरी कल्पनाएं नहीं माना बल्कि अपने अथक प्रयत्नों द्वारा प्रारंभ में असंभव प्रतीत होने वाली बहुत सी कल्पनाओं को साकार कर दिया। विचारकों ने पक्षी की तरह हवा में उड़ने की कल्पना की तो वैज्ञानिकों ने वास्तव में हवाई जहाज का विकास कर उस कल्पना को चरितार्थ कर दिया। मुनियों ने दूसरे ग्रहों पर पहुंचने की कल्पना की तो वैज्ञानिकों ने मनुष्य को चन्द्रमा पर तो पहुँचा ही दिया है तथा अन्य ग्रहों पर पहुंचने का प्रयत्न भी वैज्ञानिक कर रहे हैं।
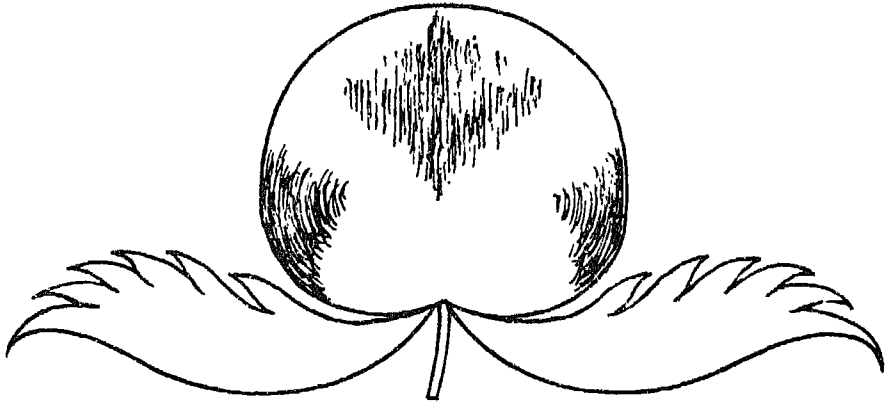
चित्र 1.2 – एक काल्पनिक पंखयुक्त संतरे का फल

वैज्ञानिकों का ध्यान एक अन्य रोचक तथ्य की ओर आकर्षित हुआ कि बच्चे पिता या माता में से किसी एक के पूर्णतः प्रतिरूप नहीं होते, अपितु उनमें दोनों के ही कुछ गुण आते हैं, जैसे यदि माता-पिता की आंखें भूरी हैं तो साधारणतः संतान की आखें भी भूरी होती हैं। इसी

प्रकार यदि माता-पिता के बाल घुंघराले हैं तो सामान्यतः उनके बच्चों के बाल भी घुंघराले होते हैं। यही नहीं, प्रकृति का यह नियम पेड़-पौधों तथा अन्य जीवों पर भी लागू होता है। जैसे आम की गुठली से आम का ही पौधा उत्पन्न होता है न कि सेब का। इसी प्रकार बन्दर एक बन्दर को ही जन्म देता है। वास्तव में, प्रकृति के इस रोचक तथ्य को सर्वप्रथम आस्ट्रिया निवासी ग्रेगर मेंडल नामक पादरी ने सन् 1856 में पहचाना था। उन्होंने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा विलक्षण प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि प्रकृति का यह नियम बड़ा ही सुनिश्चित है। इन प्रयोगों के बारे में हम अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

जहां एक ओर वैज्ञानिक प्रकृति के इन रहस्यों की तह में जाने का प्रयत्न करता रहा, वहीं यह विचार भी उसके मानस को उद्वेलित करता रहा कि क्या वास्तव में जलपरी या जिन्न को उत्पन्न किया जा सकता है? यहीं से जैव तकनीक की कहानी प्रारंभ होती है।

जैव तकनीक का शाब्दिक अर्थ है—"जैविक—प्रक्रियाओं का उपयोग उन पदार्थों के उत्पादन के लिए करना जिनको औषधियों के रूप में तथा उद्योगों में इस्तेमाल किया जाता है।" इस परिभाषा के अनुसार चलें तो जैव-तकनीक का उपयोग अत्यधिक प्राचीनकाल से होता रहा है। जैसे गन्ने के रस के किण्वन से सिरके को बनाना तथा दूध को जमा कर दही प्राप्त करना। इसी प्रकार कृषि के क्षेत्र में भी दो विभिन्न किस्मों के पौधों के संकरण से बीजों की नई-नई किस्में तैयार करना, आदि। लेकिन पिछले तीन दशकों में वैज्ञानिकों ने अथक परिश्रम द्वारा मनुष्य को उस कगार पर पहुंचा दिया है कि वह इस सदी में नहीं तो अगली सदी में सचमुच की जलपरियाँ उत्पन्न कर सकता है। यह दूसरी बात है कि अनेक सामाजिक व नैतिक बंधनों के कारण शायद

जैव-तकनीक का उपयोग वह इस दिशा में न करे। परन्तु पिछले तीन दशकों में जैव-तकनीक के क्षेत्र में तीव्र गति से कार्य किया गया है जिससे यह लगने लगा है कि आने वाले कुछ ही वर्षों में, शायद वर्तमान सदी में ही, मनुष्य ऐसी अनेक औषधियों व पदार्थों का निर्माण करने लगेगा जिनका उत्पादन या तो असम्भव था या फिर अत्याधिक खर्चीला। उदाहरण के रूप में इंसुलिन नामक हारमोन मनुष्य के रक्त में शर्करा की मात्रा को संतुलित रखता है। परन्तु कुछ मधुमेह के रोगियों के शरीर में यह हारमोन पर्याप्त मात्रा में नहीं बनता और उनको दवा के रूप में यह बाहर से देना पड़ता है। इसका संश्लेषण काफी जटिल होने के कारण यह काफी महंगा था। किन्तु 1982 में जैव-तकनीक द्वारा इंसुलिन को संश्लेषित करने में सफलता प्राप्त हो गई जिसके कारण आशा की जा रही है कि यह निकट भविष्य में आसानी से सुलभ होने लगेगा।

जैव-तकनीक की दृष्टि से 1953 का वर्ष ऐतिहासिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस वर्ष डी.एन.ए. (डिआक्सीराइबो न्यूक्लिक एसिड) की संरचना निर्धारित की गई। 25 वर्ष के एक नवयुवक जेम्स वाट्सन द्वारा गत्ते के मॉडल बनाकर डी.एन.ए. की द्विकुंडलीय संरचना को निर्धारित करने की कहानी अत्यंत रोमांचक है जिसके बारे में हम अगले अध्याय में पढ़ेंगें। यही अणु वास्तव में आनुवांशिक गुणों को सन्तान में ले जाता है। फिर 1965 में आर.एन.ए. (राइबो न्यूक्लिक एसिड) का उपयोग परखनली में प्रोटीन संश्लेषण के लिए किया गया। इसी वर्ष भारत में जन्में वैज्ञानिक, नोबेल पुरस्कार विजेता डा. हरगोविन्द खुराना ने डी.एन.ए. में तीन न्यूक्लिओटाइडों द्वारा स्थापित आनुवांशिक कोड ज्ञात किया। 1970 में हैमिल्टन स्मिथ व डेनियल नाथंस ने एक नये एन्जाइम को खोजा जिसकी सहायता से डी.एन.ए. के किसी भाग को

काट कर अलग किया जा सकता है। इस एंजाइम को प्रतिबंध एंजाइम कहते हैं। अब तक लगभग 100 प्रतिबन्ध एंजाइम प्राप्त किये जा चुके हैं।

सन् 1972 में पॉल बर्ग ने एक आश्चर्यजनक प्रयोग किया। उन्होंने दो भिन्न विषाणुओं के डी.एन.ए. अणुओं को संयुक्त कर एक नवीन डी.एन.ए. का निर्माण किया। इस प्रयोग को ही वास्तव में जैव-तकनीक का जन्मदाता कहा जा सकता है क्योंकि इससे असीम सम्भावनाओं का मार्ग खुल गया। सन् 1973 में इस प्रयोग को आगे बढ़ाया स्टेनेले कोहेन व हरबर्ट बोयेर ने, जबकि उन्होंने पुनर्योजक डी.एन.ए. को पोषी बैक्टीरिया में प्रतिस्थापित करने पर देखा कि वह बैक्टीरिया इस नये डी.एन.ए. का निर्माण करने लगा। इस कड़ी में अनेक प्रयोग किये गये और सन् 1982 में पहली बार जैव-तकनीक द्वारा तैयार की गई इन्सुलिन बाजार में ''ह्यूमुलिन'' नाम से बिकने के लिए आ गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैव-तकनीक की आधुनिक कहानी बहुत पुरानी नहीं है। आगे के कुछ अध्यायों में हम जैव-तकनीक के कुछ मूलभूत सिद्धांतों व प्रायोगिक विधियों को समझने का प्रयत्न करेंगे, वहीं इस तकनीक के महत्व तथा भविष्य की सम्भावनाओं को भी संक्षिप्त रूप से जानेंगे। तो आइये अगले अध्याय में जैव-तकनीक की मूलभूत इकाई ''जीन'' की संरचना को समझने का प्रयत्न करें।

□□□

2

जीन की रासायनिक संरचना

19 वीं सदी के मध्य की घटना है। आस्ट्रियाई पादरी, ग्रेगर मेंडल (1822-1884) ने एक परीक्षण करने के लिए मटर की ऐसी दो किस्मों को चुना जो एक दूसरे से कम से कम एक गुण में स्पष्ट रूप से भिन्न थी। एक के बीज गोल थे जबकि दूसरे के सिकुड़े हुए। उन्होंने इन दोनों किस्मों को संकरित करने पर देखा कि संकरित किस्म के सभी बीज गोल थे। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि "गोल होना" एक ऐसा गुण है जो अधिक प्रभावी है अतः प्रथम पीढ़ी में वही गुण प्रकट होता है। इस प्रथम पीढ़ी ($प_1$) के बीजों को उन्होंने पर-निषेचित नहीं किया अपितु स्व-निषेचित होने दिया। जब उन्होंने दूसरी पीढ़ी ($प_2$) के बीज प्राप्त किये तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इन बीजों में से तीन चौथाई "गोल" बीज थे परन्तु एक चौथाई "सिकुड़े" हुए बीज थे। इन प्रयोगों को चित्र 2.1 में दर्शाया गया है।
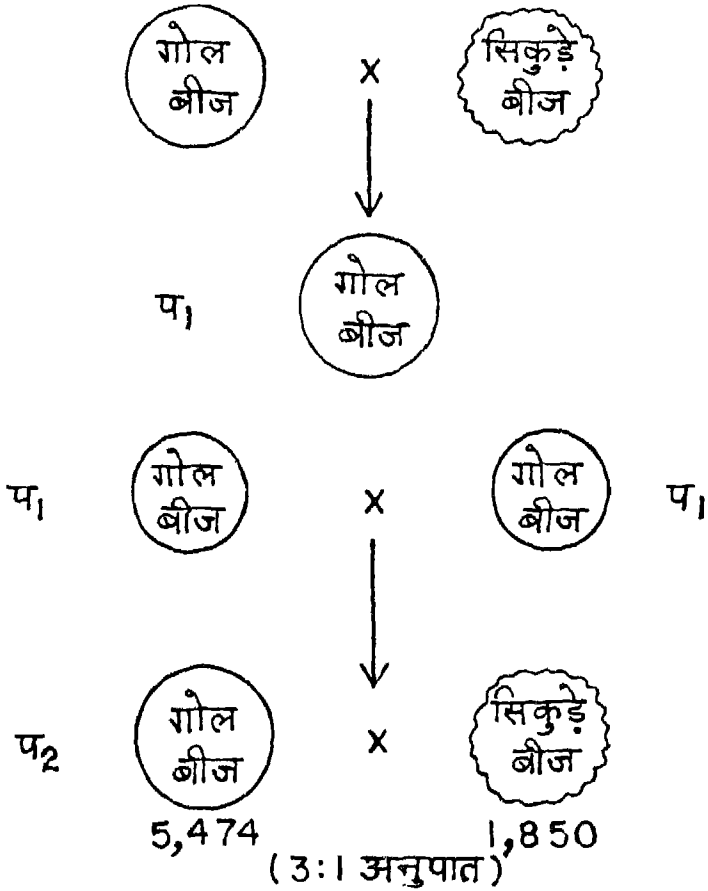
चित्र 2.1 – मेंडल द्वारा मटर के बीजों से किया गया प्रयोग

मेंडल का आविष्कार अद्‌भुत था। उन्होंने कहा कि उपर्युक्त परिणाम तभी सम्भव है जबकि प्रत्येक जनक-बीज में दो फैक्टर हों, जो

सम्मिलित रूप से कोई विशिष्ट गुण निश्चित करते हैं। (मेंडल ने जिनको फैक्टर कहा, उसी को बाद में जीन कहा गया)। यदि बीज के "गोल" होने का कारण जीन "ग" तथा सिकुड़े हुए होने का कारण जीन "स" मानें तो उपर्युक्त परिणामों को चित्र 2.3 के अनुसार समझाया जा सकता है।
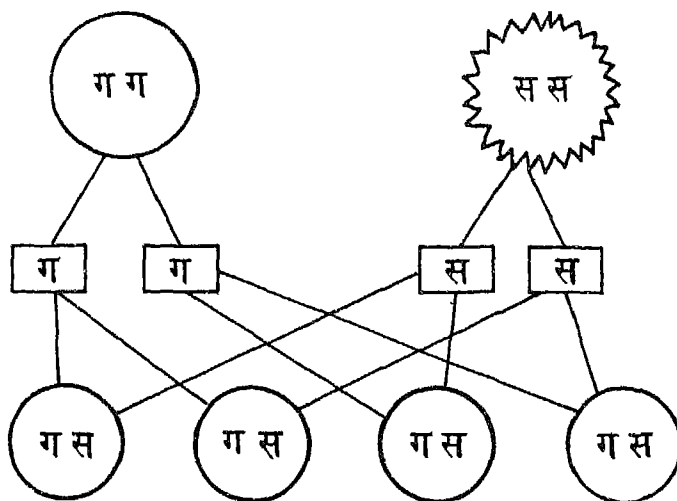
चित्र 2.2—सभी बीज गोल हैं क्योंकि "ग" अधिक प्रभावी जीन है।

बाद में मेंडल ने कुछ अन्य गुण युक्त मटर के बीज लेकर उपर्युक्त संकरण-प्रयोग किये तथा प्रकृति के इस नियम को अत्यधिक सुनिश्चित
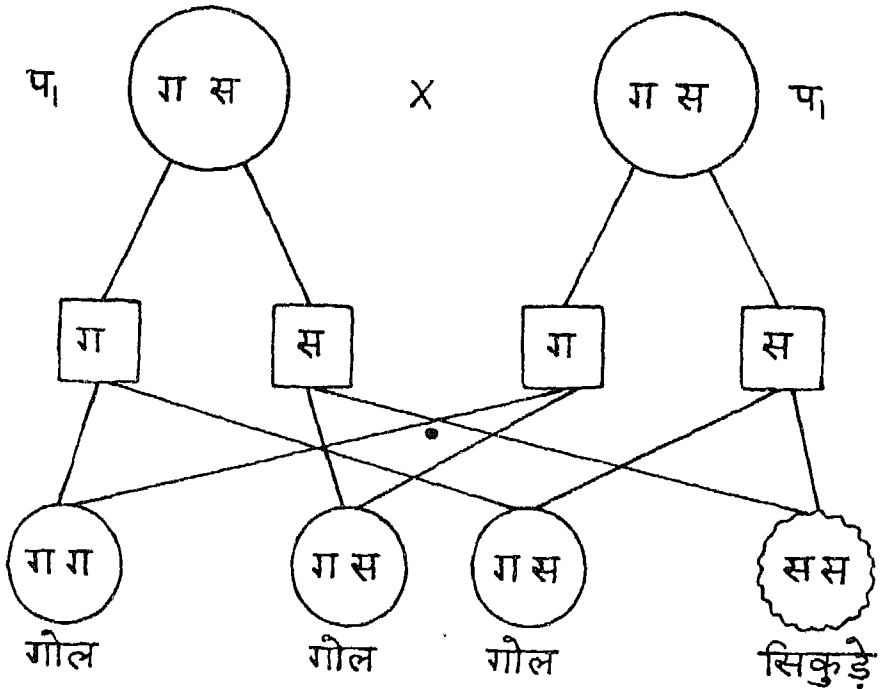
चित्र 2.3—प्रथम पीढ़ी (प₁) के बीजों का स्व-निषेचन

तथा क्रमिक पाया। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला कि "जब गुणकों के दो जोड़ों में संकरण होता है तो जोड़े का प्रत्येक गुणक स्वतंत्र रूप से दूसरे जोड़े के किसी गुणक से संयुक्त हो सकता है।"

बाद में वैज्ञानिकों ने "गुणक" को जीन नाम दिया।

आइये, अब कहानी को पौधों से मनुष्य की ओर बढ़ायें। अक्सर यह देखने में आता है कि बच्चों के नाक-नक्श, रंग रूप व आदतें माता-पिता से मिलती-जुलती होती हैं। परन्तु इसका एक दुखद पहलू

भी है—यदि माता या पिता किसी बीमारी से ग्रस्त हैं तो हो सकता है कि उनकी संतान में भी वह रोग प्रकट हो जाए। ऐसे सब गुणों को आनुवांशिक गुण कहते हैं तथा इस प्रक्रिया को आनुवांशिकी। इस प्रकार जीन ही पूर्वजों से संतान में आनुवांशिक गुण लाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि जीन आखिर है क्या? क्या इसकी कोई निश्चित रासायनिक संरचना है? जी हां प्रत्येक जीन की एक निश्चित रासायनिक संरचना होती है और प्रत्येक गुण या शारीरिक प्रक्रिया से एक विशिष्ट जीन संबंधित रहता है। यदि किसी की आंखे भूरी हैं तो उसमें एक विशिष्ट जीन उपस्थित है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के घुंघराले बालों का होना भी उसमें एक विशिष्ट जीन की उपस्थिति दर्शाता है। अब यदि यह जीन उसकी सन्तान में पहुंच गया तो संतान के बाल भी घुंघराले हो जायेंगे अन्यथा नहीं। जैसा कि हम आगे पढ़ेंगें बच्चे में कुछ जीन पिता के आते हैं तथा कुछ जीन माता के। यही कारण है कि बच्चा माता या पिता का पूर्णतः प्रतिरूप नहीं होता है अपितु उसमें कुछ अभिलक्षण आ पाते हैं। अन्य गुण पूर्णतः नवीन भी हो सकते हैं जो दो या अधिक पीढ़ियों से पहले के पूर्वजों से आए हैं।

यही बात अन्य जीवों तथा पेड़-पौधों में भी दिखाई देती है। यह देखने में नहीं आता कि आप गेहूं बोइये और उससे सरसों उग जाये। प्रकृति की प्रक्रिया इतनी सक्षम है या यों कहिये कि प्रकृति के कम्प्यूटर की स्मृति (मेमोरी) इतनी विशाल है कि इसमें गड़बड़ी नहीं हो पाती। प्रकृति के कम्प्यूटर की कार्य-प्रणाली वास्तव में जीन पर ही आधारित है। तो आइये जीन की संरचना को समझने का प्रयत्न करें।

जीन का निवास-स्थान

मेंडल के प्रयोगों से यह तो ज्ञात हो गया कि आनुवांशिकी का

आधार जीन है, परन्तु तब तक यह ज्ञात नहीं था कि वास्तव में जीन क्या है तथा इसका निवास-स्थान कहां है? वर्तमान सदी के प्रारंभ में वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंच गये कि आनुवांशिकी की कुंजी वास्तव में न्यूक्लिअस में ही है। अब प्रश्न यह उठता है कि न्यूक्लिअस कहां पर स्थित है? न्यूक्लिअस कोशिका के केन्द्र में स्थित रहता है।

जीवन की आधारभूत इकाई कोशिका है। कोशिका की तुलना किसी फैक्ट्री से की जा सकती है। जिस प्रकार फैक्ट्री में अनेक वस्तुएं बनती हैं जो रोजमर्रा की जिन्दगी को चलाने के लिए आवश्यक होती हैं, उसी प्रकार कोशिका में भी विभिन्न रासायनिक क्रियाएं होती हैं जिससे शरीर की विभिन्न क्रियाएं सम्पादित होती हैं। यह भी सम्भव है कि फैक्ट्री में सब प्रकार की वस्तुएं न बन कर एक ही प्रकार की वस्तु बने, उसी प्रकार कोशिकाएं भी विशिष्ट प्रकार की हो सकती हैं, जैसे मस्तिष्क की कोशिकाएं या मांसपेशियों की कोशिकाएं आदि। परन्तु सभी फैक्ट्रियों में एक चीज समान होती है–प्रत्येक फैक्टरी में एक केन्द्रीय प्रबन्ध कार्यालय होता है, उसमें एक मैनेजर या डायरेक्टर बैठता है जो फैक्ट्री के उत्पादन का लेखाजोखा रखता है तथा फैक्ट्री को उचित रूप से चलाने के लिए उचित निर्देश देता है। कोशिका का केन्द्रीय कार्यालय (न्यूक्लिअस) प्रत्येक कोशिका के केन्द्र में रहता है। न्यूक्लिअस में ही डायरेक्टर या यों कहिये कि "बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स" अर्थात् जीन का ऑफिस होता है, जहां से वह समस्त शारीरिक प्रक्रियाओं पर नियंत्रण रखता है। एक जन्तु-कोशिका के अनुप्रस्थ काट को चित्र 2.4 में दर्शाया गया है।
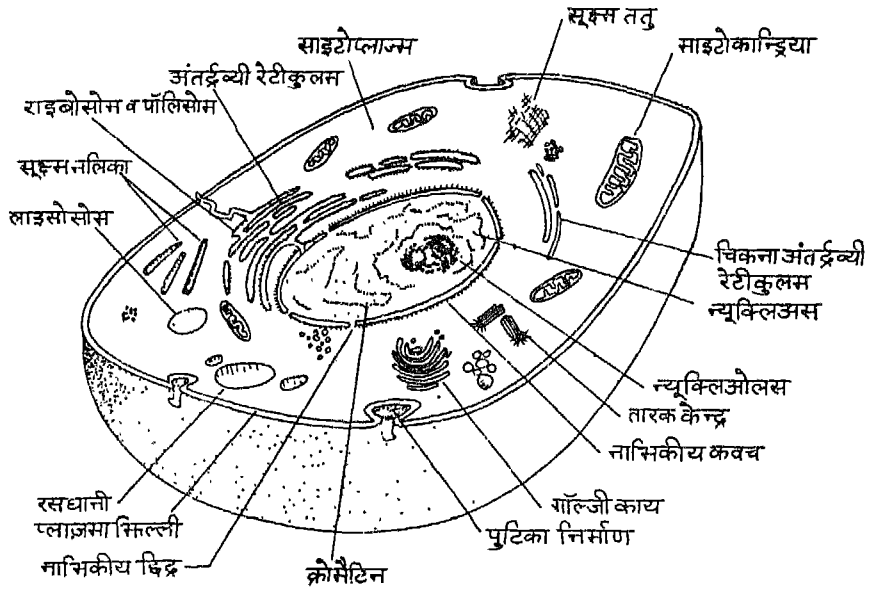
चित्र 2.4 — जन्तु कोशिका की अनुप्रस्थ काट

मानव-कोशिका के न्यूक्लिअस में उपस्थित कुल डी.एन.ए. या जीन वास्तव में 46 अलग-अलग क्रोमोसोमों के रूप में देखे जा सकते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि विभिन्न प्राणियों में इनकी संख्या निश्चित है, जैसे मानव में 46, घरेलू मक्खी में 12, बंदर में 48 तथा भालू में 48 आदि। इन क्रोमोसोमों को स्पष्ट रूप से अलग-अलग तभी देखा जा सकता है जब कोशिका एक से दो में विभाजित हो रही हो, अन्यथा सारे क्रोमोसोम एक क्रोमेटीनजाल के रूप में ही दिखाई देते हैं।

अब आइये मनुष्य के 46 क्रोमोसोमों को तनिक ध्यान से देखें। आपके निरीक्षण के लिये मानव-कोशिका के 46 क्रोमोसोमों को उनकी
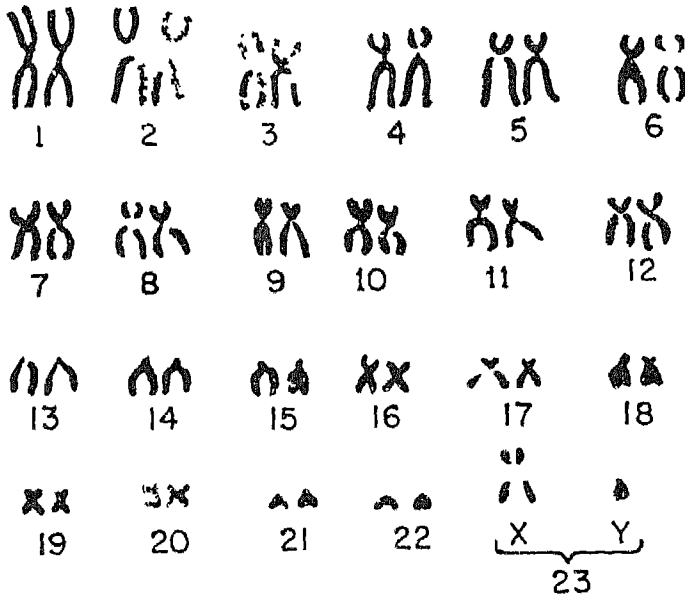
चित्र 2.5 – मानव कोशिका में उपस्थित 46 क्रोमोसोमों के 22 जोड़े आटोसोम हैं तथा 23वां जोड़ा सेक्स-क्रोमोसोम का है।

ऊँचाई के अनुसार चित्र 2.5 में एक परेड में खड़ा कर दिया है। आश्चर्य की बात है कि दो-दो क्रोमोसोम ऊँचाई के साथ-साथ आकार में भी लगभग समान दिखाई देते हैं। इस प्रकार 46 क्रोमोसोम 23 जोड़ों में खड़े हैं। क्रोमोसोमों का यह रूप एक महत्वपूर्ण तथ्य को दर्शाता है–प्रत्येक जोड़े में एक क्रोमोसोम पिता से तथा दूसरा क्रोमोसोम माता से आया है। इस प्रकार प्रत्येक शारीरिक गुण के लिए एक जीन पिता से और एक माता से आता है। अब जरा परेड के अन्तिम छोर की ओर ध्यान दें। परेड के अन्तिम छोर पर खड़े सबसे छोटे क्रोमोसोम युग्म को देखें। यही वह युग्म है जो यह निश्चित करता है कि व्यक्ति नर होगा या मादा।

मादा में यह दोनों क्रोमोसोम बिल्कुल एक जैसे दिखाई देते हैं इसलिए इनको 'XX' (एक्स-एक्स) द्वारा दर्शाते हैं। दूसरी ओर नर में एक क्रोमोसोम तो सामान्य तथा दूसरा बहुत ही छोटा अपूर्ण सा दिखाई देता है। इसलिये इस युग्म को 'XY' (एक्स-वाई) द्वारा दर्शाते हैं। इस प्रकार 22 क्रोमोसोम-युग्म नर व मादा में एक जैसे होते हैं तथा इन्हें "आटोसोम" (autosomes) कहते हैं। परन्तु 23 वें युग्म को "सैक्स-क्रोमोसोम" कहा जाता है।

बच्चे के जन्म के समय किस प्रकार क्रोमोसोम माता तथा पिता से आते हैं, इस प्रक्रिया को चित्र 2.6 में दिखाया गया है।
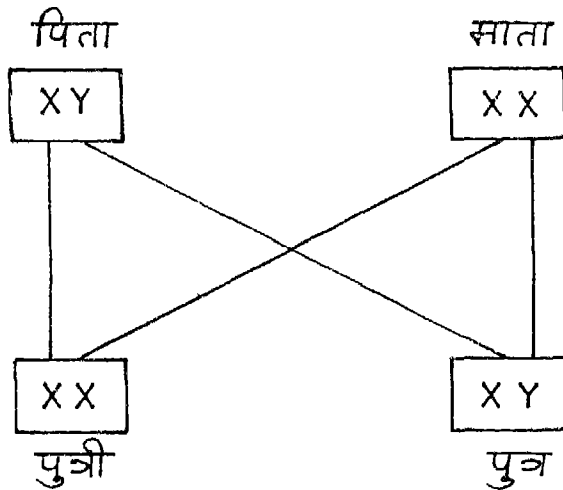
चित्र 2.6 — माता तथा पिता से संतान में क्रोमोसोम आने की प्रक्रिया

यदि किसी व्यक्ति के क्रोमोसोम या जीन में विकार हो तो उससे कई प्रकार की बिमारियाँ हो सकती हैं। इन्हीं विकृत क्रोमोसोम या जीन

के माध्यम से यह बीमारी सन्तान में भी पहुंच सकती है। इस प्रकार यह रोग पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। इस प्रक्रिया को चित्र 2.7 में दर्शाया गया है। मान लीजिये कि पिता में X (एक्स) क्रोमोसोम त्रुटिपूर्ण है, अतः इसको हम X^d (एक्सडी) द्वारा प्रदर्शित करते हैं।
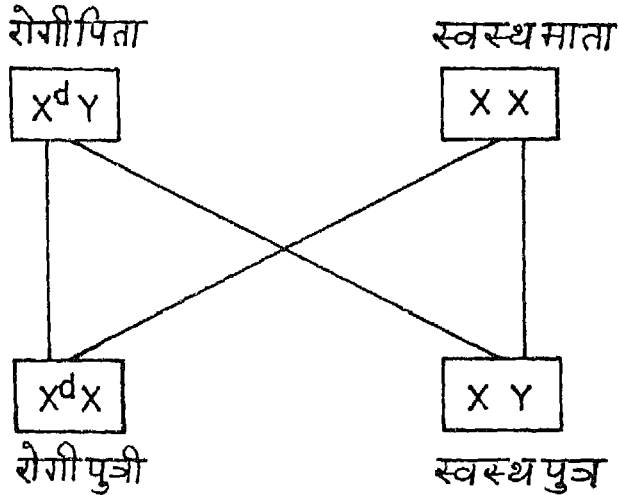
• चित्र 2.7 – रोगी पिता से संतान में त्रुटिपूर्ण-क्रोमोसोम आने की प्रक्रिया

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि इस प्रकार के माता पिता की पुत्री को वही आनुवांशिक रोग होगा जो पिता को था। एक उदाहरण और लें। मान लीजिए, माता का एक क्रोमोसोम त्रुटिपूर्ण है (चित्र 2.8)।

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि ऐसे माता पिता से स्वस्थ अथवा रोगी सन्तान (पुत्र या पुत्री) होने की बराबर सम्भावना रहती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या त्रुटिपूर्ण क्रोमोसोम को या दूसरे
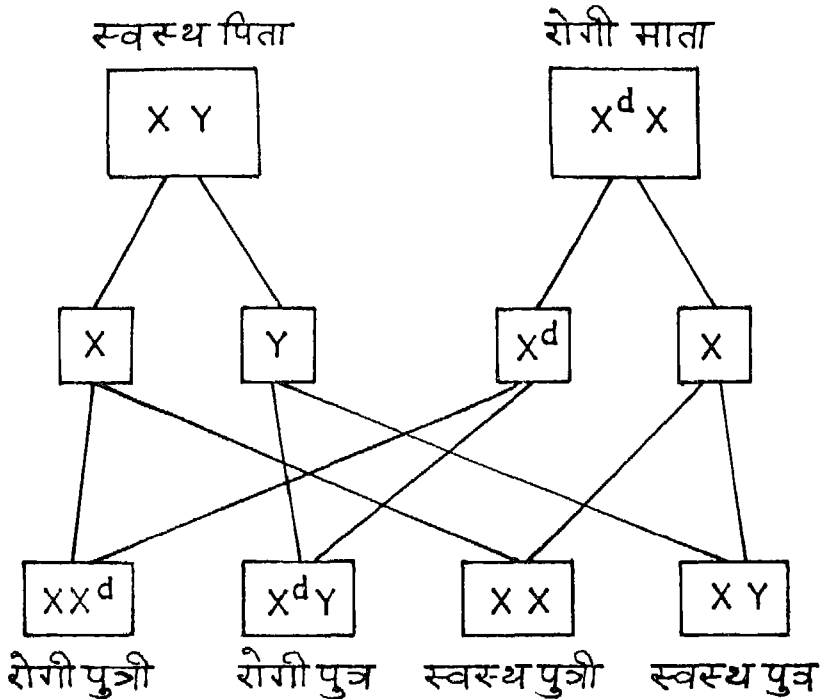
चित्र 2.8 – रोगी माता से संतान में त्रुटिपूर्ण क्रोमोसोम आने की प्रक्रिया

शब्दों में त्रुटिपूर्ण जीन को ठीक किया जा सकता है ताकि आनुवांशिक रोग आगे न बढ़े। हां, अब यह सम्भव है। परन्तु किस प्रकार? इसको समझने से पहले जीन की संरचना समझना आवश्यक है।

डी.एन.ए. की संरचना

जीन का निर्माण एक वृहत् अणु करता है जिसको डिऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड या संक्षेप में डी.एन.ए. कहते हैं। अतः

सर्वप्रथम हम डी.एन.ए. की संरचना को समझने का प्रयत्न करते हैं।

डी.एन.ए. का रासायनिक विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि यह तीन प्रकार के पदार्थों के संयोग से बना है—शर्करा (डिऑक्सीराइबोस), फॉस्फेट तथा नाइट्रोजनयुक्त विषमचक्रीय* बेस। नाइट्रोजनयुक्त विषमचक्रीय बेस चार प्रकार के होते हैं—ऐडेनीन, ग्वानीन, थाइमीन तथा साइटोसीन। इनमें से पहली दो बेस प्यूरीन समूह की हैं तथा बाद की दो पिरिमिडीन समूह की। यह कल्पना करना कठिन है कि प्रकृति ने इन चार बेसों को ही क्यों चुना।
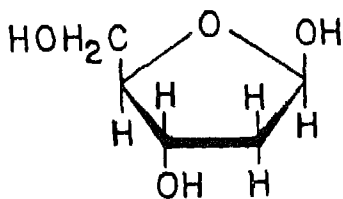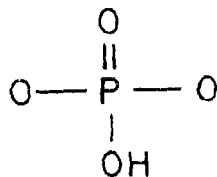
डिऑक्सीराइबोस फास्फेट
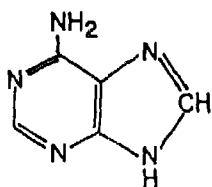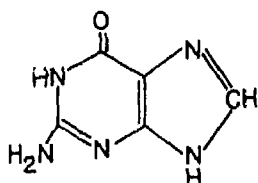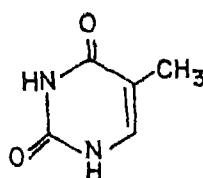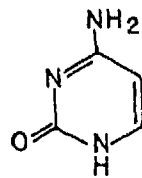
ऐडेनीन ग्वानीन थाइमीन साइटोसीन

चित्र 2.9 – डी.एन.ए. में उपस्थित विषमचक्रीय बेस

*विषमचक्रीय यौगिक—वे चक्रीय यौगिक होते हैं जिनके वलय में कार्बन के अलावा कम से कम एक विषम परमाणु जैसे ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, सल्फर इत्यादि हों।

अब प्रश्न उठता है कि ये यौगिक आपस में किस प्रकार जुड़ कर डी.एन.ए. का निर्माण करते हैं। डी.एन.ए. की संरचना समझने के लिए फूलों की एक ऐसी लम्बी लड़ी की कल्पना करो जिसको एक लम्बे धागे में चार रंग के फूलों को पिरोकर तैयार किया गया है। इन चार रंग के फूलों को हम किसी भी क्रम में पिरो सकते हैं। अब आप कल्पना कीजिये कि अगर हमको लगभग एक लाख या इससे भी अधिक फूल पिरोकर लड़ी तैयार करनी है तो इस प्रकार की लड़ी में चार प्रकार के पुष्पों के क्रम की असंख्य सम्भावनाएं होंगी।

वास्तव में डी.एन.ए. की संरचना कुछ इसी प्रकार की लड़ी जैसी है। इसमें धागे का निर्माण दो पदार्थ—शर्करा (डिऑक्सीराइबोस) व फॉस्फोरिक अम्ल बार-बार संयुक्त होकर करते हैं। इस धागे को हम निम्न प्रकार प्रदर्शित कर सकते (चित्र 2.10) हैं।

चित्र 2.10—शर्करा और फॉस्फोरिक अम्ल के संयोग से बनी लम्बी श्रृंखला

अब इस धागे में भी चार प्रकार के पुष्प गुंथे हैं और ये हैं चार विषमचक्रीय बेस ऐडेनीन (Adenine), ग्वानीन (Guanine), साइटोसिन (Cytocine) तथा थाइमीन (Thymine), जिनको हम क्रमशः ए., जी., सी. तथा टी. द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं। परन्तु इस लड़ी का धागा कुछ इस प्रकार का है कि केवल शर्करा वाले भाग में ही

पुष्प पिरो सकते हैं अर्थात् डी.एन.ए. के धागे में शर्करा वाले भाग से बेस (ए., जी., सी. तथा टी.) जुड़ा रहता है। इस प्रकार डी.एन.ए. की लड़ी के एक छोटे से हिस्से को हम निम्न प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं–
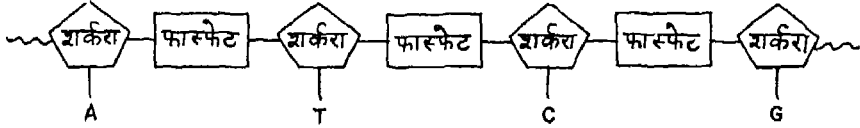
चित्र 2.11 – डी.एन.ए. श्रृंखला का एक भाग

या अब हम डी.एन.ए. के एक छोटे से भाग को और अधिक सरल रूप से निम्न प्रकार दर्शा सकते हैं–
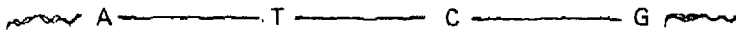
चित्र 2.12 – डी.एन.ए. श्रृंखला के एक भाग का सरल रूप

यहां पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि डी.एन.ए. की उपयुक्त पट्टी की एक निश्चित लम्बाई में चार बेसों का एक निश्चित क्रम उस भाग को विशिष्टता प्रदान करता है।

डी.एन.ए. की द्विकुंडलीय संरचना अर्थात वाटसन–क्रिक मॉडल

डी.एन.ए. की संरचना की कहानी यहीं नहीं खत्म होती। डी.एन.ए. की जिस संरचना का ऊपर जिक्र किया गया है, उसे प्राथमिक संरचना कहते हैं। वैज्ञानिकों को पूर्ण विश्वास हो गया था कि डी.एन.ए. की संरचना इतनी सीधी-सादी न होकर काफी जटिल है। पॉलिंग द्वारा

प्रस्तावित प्रोटीन अणुओं की ऐल्फाहैलिकल संरचना ने भी इस विचार को बल प्रदान किया था। मॉरिस विलकिन्स द्वारा किये गये ऐक्स-रे अध्ययन से भी यही निष्कर्ष निकलता था कि डी.एन.ए. की संरचना त्रिविम (Three dimensional) है। विश्व भर के वैज्ञानिकों में इस बात की होड़ लगी थी कि डी.एन.ए. की सही संरचना की जानकारी कौन पहले प्राप्त करे। जो भी डी.एन.ए. की वास्तविक संरचना की जानकारी सर्वप्रथम विश्व को देता, वही नोबेल पुरस्कार का अधिकारी होता। हुआ भी यही। जेम्स वाटसन, फ्रैंसिस क्रिक्स व मारीस विलकिंस ने 1953 में सर्वप्रथम डी.एन.ए. की द्वि-कुंडलीय संरचना को ज्ञात किया जिसके लिए उन्हें 1962 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

25 वर्षीय नवयुवक वाटसन द्वारा डी.एन.ए. की द्वि-कुंडलीय संरचना ज्ञात करने की कहानी अत्याधिक रोमांचक है। वाटसन विभिन्न विधियों द्वारा प्राप्त परिणामों को सम्मिलित कर डी.एन.ए. की वास्तविक संरचना को ज्ञात करने का प्रयत्न कर रहे थे। एक्स-रे से प्राप्त परिणाम यह संकेत दे रहे थे कि यह एक हैलिकल संरचना है जिसकी रीढ़ या आधार फास्फेट व शर्करा मिल कर बनाते हैं तथा बेस शर्करा से जुड़े हैं। इसके अतिरिक्त फास्फेट-शर्करा की रीढ़ बाहर की ओर है जबकि बेस कुंडली के अंदर की ओर (चित्र 2.13)।

परन्तु समस्या यह थी कि इस प्रकार की हैलिकल संरचना किस प्रकार स्थायी रहती है पॉलिंग द्वारा प्रस्तावित ऐल्फा-हैलिकल संरचना को हाइड्रोजन-बंध स्थायी रूप में रखता है, यह तथ्य इस ओर इंगित कर रहा था कि सम्भवतः डी.एन.ए. में भी हाइड्रोजन बंध ही यह कार्य कर रहा है। परन्तु कैसे? वाटसन को स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि इस समस्या का हल आण्विक-मॉडल बना कर ही निकाला जा सकता है।

उन्होंने एक मिस्त्री से मॉडल बनाने को कहा। लेकिन वे इस समस्या का हल निकालने को बेचैन थे। उन्होंने धातु के मॉडलों का इन्तजार नहीं किया बल्कि स्वयं चार बेसों के गत्ते के मॉडल बना कर उनसे खेलने लगे। उन्हें स्पष्ट लग रहा था कि ये बेस आपस में हाइड्रोजन बंध बना कर एक द्विकुंडलीय संरचना बना रहे थे। अब प्रश्न था कि कौन-कौन से बेस आपस में हाइड्रोजन बंध बना रहे हैं। वाटसन ने प्रारंभ में समान बेसों के मध्य हाइड्रोजन बंध बना कर देखा (चित्र 2.14)।
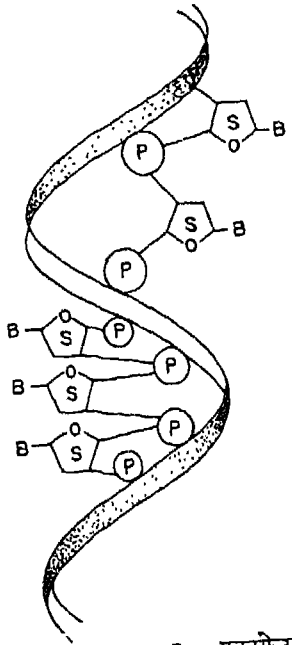
परन्तु वे तुरंत समझ गये कि यह संभव नहीं है, क्योंकि इस दशा में दो बेसों के मध्य खाली स्थान अर्थात् कैविटी समान नहीं है जबकि एक्स-रे अध्ययन यह इंगित कर रहे थे कि डी.एन.ए. में दो कुंडलियों के मध्य अन्तर समान रहता है। परन्तु तभी उनका ध्यान पहले से प्रकाशित चारगैफ नियम(Chargaff rules) की ओर गया जिसके अनुसार डी एन.ए. में पिरिमिडीन बेस व प्यूरीन बेस समान अनुपात में रहते हैं।

चित्र 2.13 – डी.एन.ए. की कुंडलीय संरचना का एक भाग
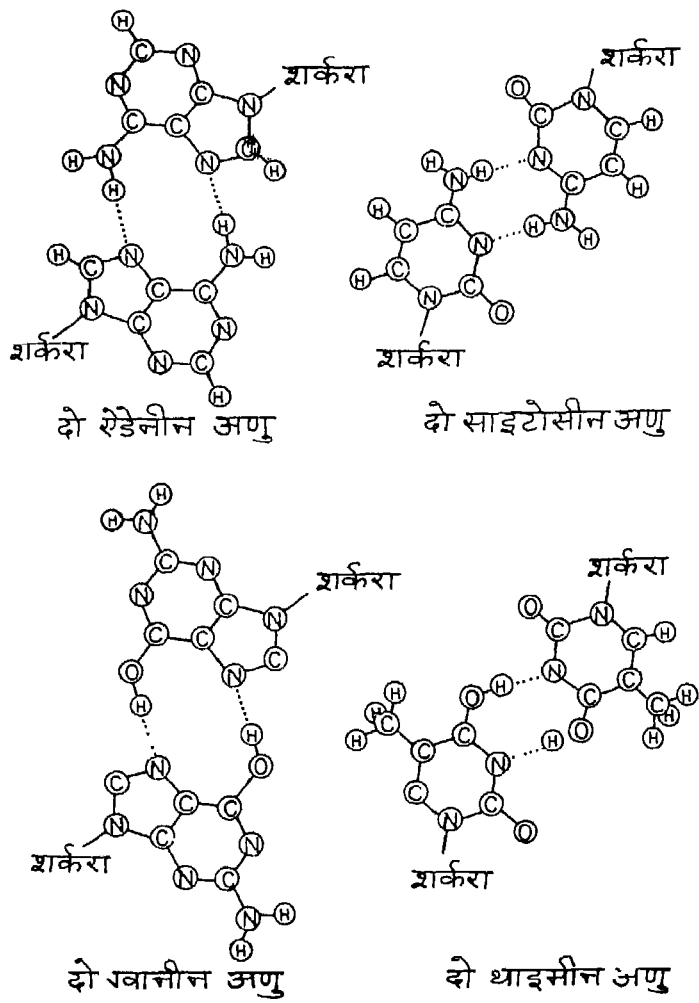
चित्र 2.14 – समान बेसों के मध्य हाइड्रोजन बंध

यह तभी सम्भव था जबकि एक पिरिमिडीन बेस दूसरे प्यूरीन बेस के साथ हाइड्रोजन बंध बनाये। यह विचार कौंधते ही वे एक बार फिर अपने गत्ते के मॉडलों से खेलने के लिए बेचैन हो उठे और अगली सुबह सबसे पहले अपनी प्रयोगशाला में पहुंच गये। एक बार उन्होंने फिर गत्ते के मॉडलों को जोड़ना शुरू किया। लीजिए हल मिल गया। वाटसन ने जब ऐडेनीन (ए) व थाइमीन (टी) के मध्य तथा ग्वानीन (जी) व साइटोसीन (सी) के मध्य हाइड्रोजन बंध बनाये तो उन्होंने देखा कि दोनों में कैविटी का माप बिल्कुल समान है (चित्र 2.15) अर्थात् यदि ए व टी बेसों के मध्य हाइड्रोजन बंध बने तथा जी व सी के मध्य हाइड्रोज बंध बने तो पिरिमिडीन व प्यूरीन बेस समान अनुपात में होंगे तथा साथ ही
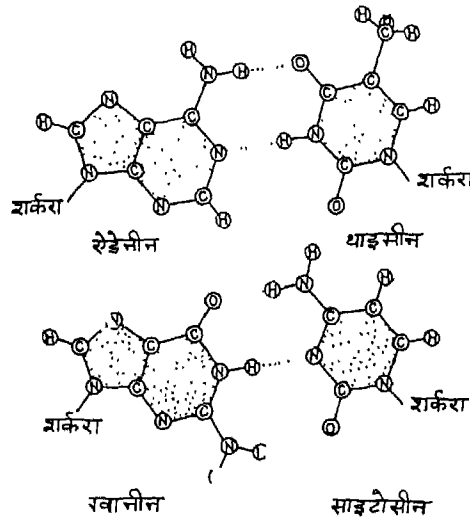
चित्र 2.15 – ऐडेनीन व थाइमीन के मध्य तथा ग्वानीन व साइटोसीन के मध्य हाइड्रोजन बंध

डी.एन.ए. की दो कुंडलियों के बीच में समान अंतर या कैविटी रहेगी तो इस प्रकार हुआ जन्म डी.एन.ए. की द्विकुंडलीय संरचना का (चित्र 2.16)।

डी.एन.ए. का वाटसन क्रिक्स मॉडल समझने के लिए हम एक लचीली सीढ़ी की कल्पना करते हैं (चित्र 2.17)। यदि इसमें दोनों आधार डंडों को पकड़ कर चित्रानुसार ऐंठे तो एक कुंडलीनुमा सीढ़ी (चित्र 2.18) प्राप्त होती है।

वास्तव में डी.एन.ए. की दो लड़ियाँ आपस में संयुक्त होकर इसी प्रकार की कुँडलीनी सीढ़ी बनाते हैं। इस सीढ़ी के बीच के पदों या
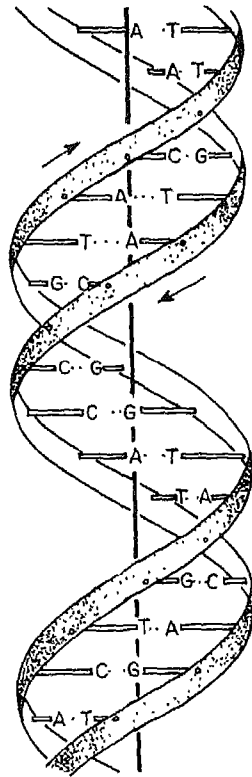
चित्र 2.16 – डी.एन.ए. की द्विकुंडलीय संरचना

"स्टैप्स" का निर्माण बेसों के मध्य बनने वाले हाइड्रोजन बंध* करते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है, ये हाइड्रोजन बंध केवल ए (ऐडेनीन) व टी (थाइमीन) तथा जी (ग्वानीन) व सी (साईटोसीन) के मध्य ही बनते हैं। इस प्रकार बनी डी.एन.ए. सीढ़ी को साधारण रूप में चित्र 2.19 ख में तथा वास्तविक कुंडलीनुमा आकार (हैलिकल संरचना) को चित्र 2.16 में दर्शाया गया है।
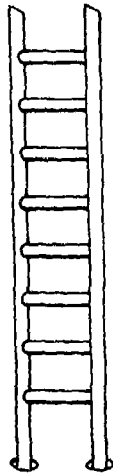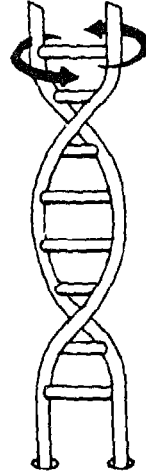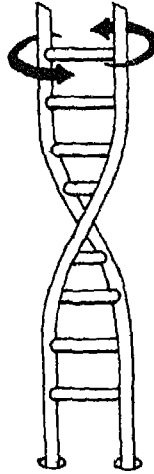
चित्र-2.17 चित्र-2.18

*हाइड्रोजन-बंध—जब हाइड्रोजन किसी ऋण-विद्युती तत्व जैसे नाइट्रोजन, ऑक्सीजन आदि से संयुक्त रहता है तो इस पर आंशिक धन-आवेश होता है जिसके कारण यह दूसरे ऋण-विद्युती तत्व के साथ आंशिक बंध बनाता है। इसी आंशिक बंध को हाइड्रोजन बंध कहते हैं। इसको साधारणतः टूटी हुई पंक्ति द्वारा प्रदर्शित करते हैं। जैसे ऐल्कोहल में हाइड्रोजन-बंध उपस्थित रहता है (चित्र 2.19क)।

यद्यपि एक हाइड्रोजन बंध स्वयं में अधिक मजबूत नहीं होता है, परन्तु एक हैलिकल संरचना में इस प्रकार के हजारों हाइड्रोजन बंध बनकर इस संरचना को पर्याप्त स्थायित्व प्रदान करते हैं तथा डी.एन.ए. इसी रूप में कोशिका के न्यूक्लिअस में उपस्थित रहता है।

जीन की संरचना

अब यदि हम उपर्युक्त द्विकुंडलित संरचना (चित्र 1.16) के एक छोटे हिस्से पर ध्यान केन्द्रित करें तो हम पायेंगे कि हाइड्रोजन बंध द्वारा बने बेसों के जोड़े उस हिस्से को विशिष्टता प्रदान करते हैं और यही वह विशिष्टता है जिसको हम जीन कहते हैं। इसी विशिष्टता में जीवन का रहस्य छिपा है। एक उदाहरण लें (चित्र 2.20)।

चित्र 2.19क—ऐल्कोहल में हाइड्रोजन बंध
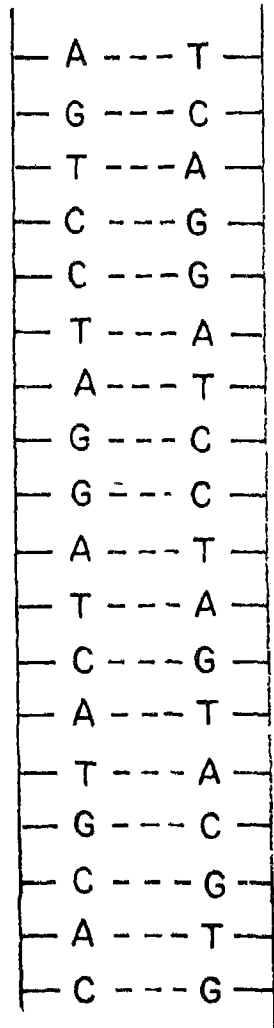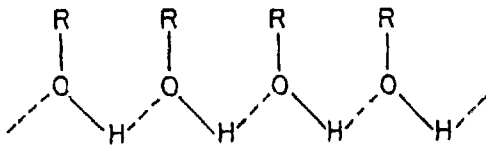
चित्र 2.19ख—डी.एन.ए. में विभिन्न ठोसों के मध्य निर्मित हाइड्रोजन बंध (साधारण निरुपण)
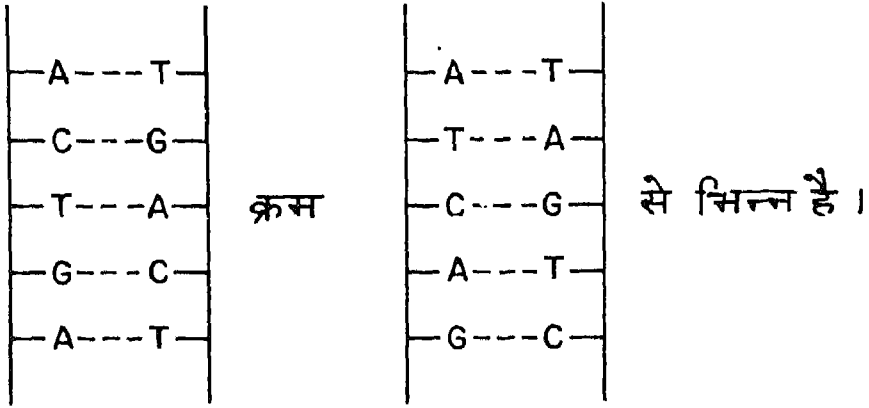
चित्र-2.20

साधारणत: किसी जीन में लगभग 1500 बेस जोड़े होते हैं। आइये, जरा जीन की लम्बाई और चौड़ाई का भी लेखा-जोखा लें। डी.एन.ए. इतना सूक्ष्म है कि यदि इसको हम तीन लाख गुना बड़ा करके देखें तो यह लगभग 3 मिमी. मोटे धागे के समान दिखाई देगा तथा एक जीन की लम्बाई लगभग 50 मिमी. होगी। इसी पैमाने के आधार पर एकलकोशीय बैक्टीरिया में उपस्थित डी.एन.ए. की लम्बाई डेढ़ किलोमीटर से भी अधिक होगी।

अब जरा हम मनुष्य की बात करें। मनुष्य की कोशिका में उपस्थित डी.एन.ए. की मात्रा बैक्टीरिया की कोशिका से कहीं ज्यादा होती है यद्यपि जीन की लम्बाई लगभग उतनी ही होती है (लगभग 1500 बेस युगल)। मनुष्य की कोशिका में उपस्थित डी.एन.ए. से 30 से 40 लाख जीन बन सकते हैं। इतने डी.एन.ए. की लम्बाई को यदि हम उपयुक्त पैमाने पर ही नापे तो वह लगभग 1500 किलोमीटर आयेगी।

अर्थात् मनुष्य की एक कोशिका मे उपस्थित डी.एन.ए. को धागे के रूप में खोलकर यदि एक छोर दिल्ली से प्रारंभ करे तो दूसरा छोर कलकत्ता तक पहुंच जायेगा और अब इस धागे पर चलना प्रारंभ करे तो हर 50 सेमी. पर एक जीन दिखाई देगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रत्येक जीन में बेस जोड़ों का क्रम निश्चित है और इसी विशिष्ट क्रम में जीवन की पहेली छिपी है। जब तक यह क्रम बना रहता है, जीन अपना कार्य ठीक प्रकार करता है। जैसा कि हम आगे देखेंगे, साधारणतः इस क्रम में गड़बड़ नहीं होती और पीढ़ी दर पीढ़ी यह क्रम चलता रहता है। इसी को आनुवांशिक-अभिलक्षण (Hereditary Characters) कहते हैं। परंतु जैसे ही इस क्रम में परिवर्तन होता है, एक नया जीन बन जाता है। इस नवीन जीन की क्रिया हानिकारक भी हो सकती है और लाभदायक भी। इस समस्त प्रक्रिया को म्यूटेशन कहते हैं। परन्तु इस सिद्धांत का दूसरा पहलू अर्थात् लाभदायक जीन का बनना स्वाभाविक रूप से ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस क्रिया को कृत्रिम रूप से करने की तकनीक का विकास भी कर लिया गया है और इसी को तो कहते हैं—जीन इंजीनियरिंग।

परन्तु अभी हमें इस बात का उत्तर नहीं मिल पाया है कि घुंघराले बाल वाले माता पिता की सन्तान के भी बाल साधारणतः क्यों घुंघराले होते हैं और गेहूं बोने पर क्यों गेहूं ही उगता है। स्पष्टतः कोई प्रक्रिया ऐसी है जिसके द्वारा माता पिता के जीन सन्तान में पहुंचते हैं और वहां पर स्वाभाविक रूप से वही कार्य करते हैं जो माता-पिता में कर रहे थे।

डी.एन.ए. का अनुलिपिकरण

इस क्रिया में पहले डी.एन.ए. की दो लड़ियों के मध्य हाइड्रोजन बंध टूटने लगते हैं और वे पृथक् होने लगती हैं। यह क्रिया उसी प्रकार से होती है जैसे कि एक जिपर खुलता है (चित्र 2.21 क)। अब ये अलग

हुई लड़ियां, सांचे (टैम्पलेट) का कार्य करती हैं और इन पर नये न्यूक्लिओटाइडों* द्वारा इनकी प्रतिरूपी लड़ियां बनने लगती हैं (चित्र 2.21 क तथा 2.21 ख)। परन्तु नई लड़ियों के बनने के समय भी होता यही है कि A पर T तथा G पर C बेस जुड़ता है। जैसे जैसे नई डी.एन.ए. लड़ियां बनती हैं वैसे वैसे मूल डी.एन.ए. की दो लड़ियां खुलती जाती है और अंत में हैलिकल रूप में गुथी दो नयी डी.एन.ए. संरचनाएं बन जाती हैं जो मूल डी.एन.ए. की प्रतिरूप होती हैं। (चित्र 2.21 ख)। द्विकुंडलीय संरचना में अनुलिपिकरण को चित्र 2.22 में दिखाया गया है। यह प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रहती है और प्रत्येक जीन अपना प्रतिरूपी जीन तैयार करता रहता है। यही जीन जब सन्तान में पहुंचते हैं तो स्वाभाविक रूप से वही गुण उत्पन्न करते हैं जो माता पिता में थे। इसी प्रकार गेहूँ में विशिष्ट जीन होते हैं जो गेहूँ के पौधों का ही निर्माण करेंगे न कि सरसों के पौधों का।

***न्यूक्लिओटाइड :** शर्करा-फास्फेट व बेस के संयोग से बनी एक यूनिट को न्यूक्लिओटाइड कहते हैं (चित्र 2.21 ग)।
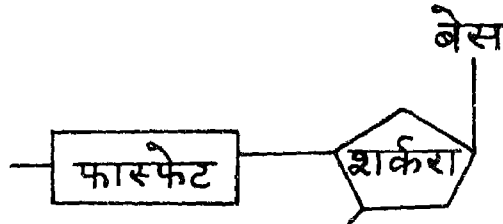
चित्र-2.21 (ग)–न्यूक्लिओटाइड
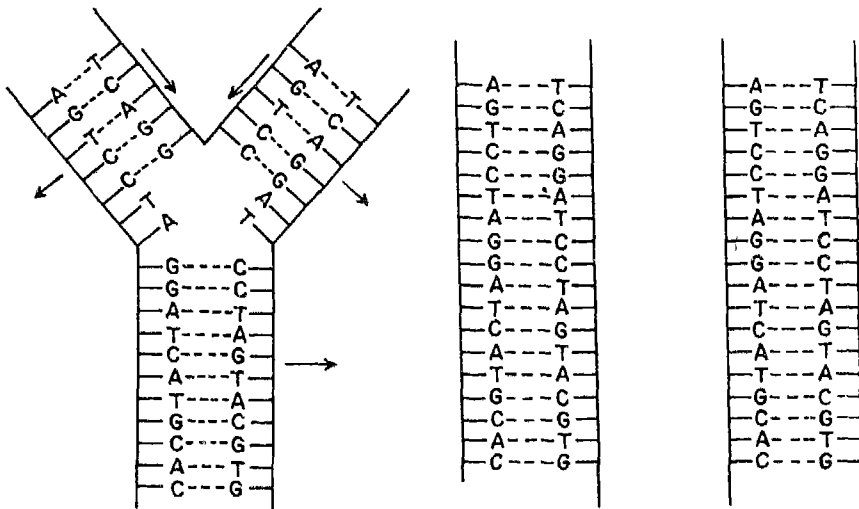
चित्र-2.21 (क) चित्र-2.21 (ख)

डी.एन.ए. के अनुलिपिकरण का साधारण चित्रण

राइबोन्यूक्लिक एसिड या आर.एन.ए.

यहां पर एक अन्य न्यूक्लिक एसिड का जिक्र कर देना उचित होगा। इसको राइबोन्यूक्लिक एसिड या संक्षेप में आर.एन.ए. कहते हैं। इसकी आधारभूत संरचना भी डी.एन.ए. जैसी ही होती है अन्तर केवल इतना होता है कि आर.एन.ए. में शर्करा डिआक्सीराइबोस न होकर राइबोस होती है तथा बेस थाइमीन के स्थान पर यूरेसील होती है। इन तीनों इकाईयों का क्रम डी.एन.ए. जैसा ही होता है किन्तु आर.एन.ए. में हैलिकल संरचना नहीं होती अपितु इसमें अकेली लड़ी ही होती है। इसका निर्माण डी.एन.ए. ही करता है तथा यह न्यूक्लिअस से बाहर आकर साइटोप्लाजम में रहता है। वास्तव में यह डाकिये का काम करता है अर्थात् डी.एन.ए. से सूचना लाकर साइटोप्लाजम से विशिष्ट प्रोटीन

का निर्माण करता है। इसीलिए इसको मैसेन्जर आर.एन.ए. कहते हैं (चित्र 2.23)।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जीवन क्रिया सुचारू रूप से चलने के लिए डी.एन.ए., आर.एन.ए. व प्रोटीन संश्लेषण में एक विशिष्ट
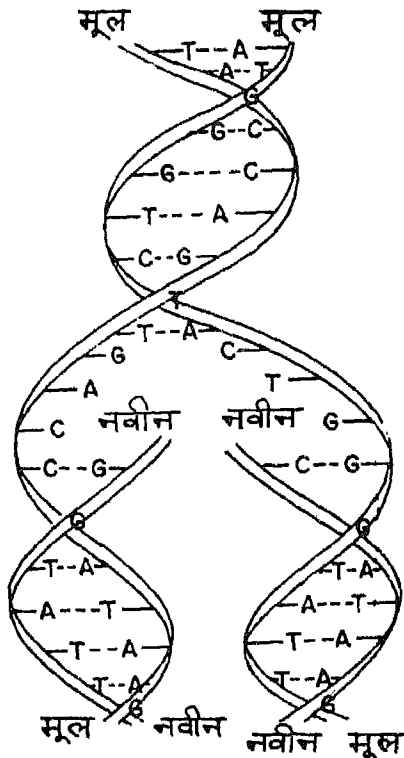
चित्र 2.22 – द्विकुंडलीय संरचना में डी.एन.ए. का अनुलिपिकरण
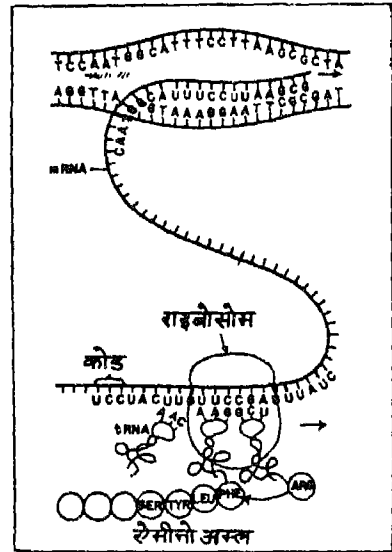
चित्र 2.23 – आर.एन.ए. द्वारा कोशिका में प्रोटीन का निर्माण

सामंजस्य होना आवश्यक है। जैसे ही इस चक्र में कुछ परिवर्तन होता है, वैसे ही जीव में नवीन अभिलक्षण उत्पन्न होने प्रारंभ हो जाते हैं जिस क्रिया को म्यूटेशन कहते हैं। इस परिवर्तन का उपयोग लाभदायक तरीके से करने की विधि को ही जीन-इंजीनियरिंग कहते हैं जिसका वर्णन अगले अध्याय में किया जायेगा।

□□□

3

जीन-इंजीनियरिंग और क्लोनिंग

"इंजीनियरिंग" शब्द सुनते ही हमारे मस्तिष्क में कल-पुर्जों या मशीनों का विचार उठता है जिससे आवश्यकता के अनुरूप नये नये यन्त्रों का निर्माण किया जाता है, पुराने यन्त्रों में विकास करने के अतिरिक्त उनकी मरम्मत की जाती है, इत्यादि। क्या "जीन-इंजीनियरिंग" से भी कुछ इसी प्रकार का अभिप्राय है? जी हां। जैसा कि इस शब्द को पढ़ने से ही झलकता है, विज्ञान की इस शाखा के अन्तर्गत हम जीन या आनुवांशिकी को कृत्रिम उपायों से परिवर्तित करने का प्रयास करते हैं।

पिछले अध्याय में हमने देखा कि डी.एन.ए. अणु में बेस युगलों के विशिष्ट क्रम में ही जीवन की पहेली छिपी है जिसको जीन कहते हैं। आईये, जरा इस पर और सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें। प्रत्येक जीन एक विशिष्ट आर.एन.ए. बनाता है जो न्यूक्लिअस से बाहर आकर कोशिका में एक विशिष्ट प्रोटीन का संश्लेषण करता है (चित्र 2.23)। शरीर की

कोशिकाओं में सभी रासायनिक क्रियाएं एन्जाइम ही सम्पादित करते हैं। प्रत्येक रासायनिक क्रिया एक विशिष्ट एन्जाइम ही सम्पन्न करता है। प्रत्येक जीन एक विशिष्ट आदेश देता है जबकि मैसेन्जर आर.एन.ए. उस आदेश का पालन करता है। जीन ने आदेश दिया कि इंसुलिन बनाओ—आर.एन.ए. न्यूक्लिअस से बाहर आकर इंसुलिन बनाता है। इसी प्रकार दूसरे जीन ने हीमोग्लोबिन को संश्लेषित करने का आदेश दिया और आर.एन.ए. ने उस आदेश का पालन किया। इस प्रकार जीव में असंख्य क्रियाएं चलती रहती हैं।

अब कल्पना कीजिए कि जीन में कहीं पर गड़बड़ हो गई। दूसरे शब्दों में उसका विशिष्ट बेस-युगलों का क्रम बिगड़ गया तो वह आर.एन.ए. को ठीक संकेत नहीं दे पायेगा जिसके कारण आर.एन.ए. वह विशिष्ट प्रोटीन संश्लेषित नहीं कर पायेगा जो कि कोशिका में एक विशिष्ट रासायनिक अभिक्रिया सम्पन्न करती है। परिणाम क्या होगा? वह रासायनिक अभिक्रिया तो रुक जायेगी जो कोशिका रूपी फैक्ट्री के चलते रहने के लिए आवश्यक थी, परन्तु उसके स्थान पर कोई नई हानिकारक अभिक्रिया प्रारंभ हो सकती है, जो किसी रोग को जन्म दे सकती है। इसी प्रक्रिया को म्यूटेशन कहते हैं।

उपर्युक्त-क्रिया को मधुमेह-रोग का उदाहरण लेकर समझाया जा सकता है। अधिकांश मधुमेह के रोगियों में एक निश्चित जीन के विकृत होने के कारण अग्नाशय कोशिकायें (β-cells of the islets of Zangerhans/Pancreas) इंसुलिन नामक महत्त्वपूर्ण हारमोन नहीं बनाती।

इस सन्दर्भ में तीन प्रश्न मस्तिष्क में उठते हैं—

(1) क्या एक जीव के जीन का किसी दूसरे जीव के जीन के साथ संकरण संभव है?

(2) किसी विशिष्ट जीन को एक जीव से निकालकर दूसरे जीव में प्रतिस्थापित करने पर क्या वह जीव वही पदार्थ संश्लेषित करेगा जो वह पहले जीव में कर रहा था, या इसमें कुछ परिवर्तन होगा।

(3) जिस प्रकार पुराने टूटे हुए यंत्र की मरम्मत करते हैं, क्या उसी प्रकार त्रुटिपूर्ण जीन की मरम्मत की जा सकती है?

उपर्युक्त तीनों क्रियाएं ही एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा इस क्षेत्र में जिस तकनीक का उपयोग किया जाता है उसे ही जीन-इंजीनियरिंग कहते हैं। जीन की मरम्मत करना, नये जीन-संकरणों का निर्माण करना तथा जीन की संश्लेषण-क्षमता का औद्योगिक दृष्टि से उपयोग करने की विधियों को विकसित करना ही जीन—इंजीनियरिंग के अन्तर्गत आता है।

जीन-इंजीनियरिंग का प्रथम प्रयोग करने का श्रेय ब्रिटिश वैज्ञानिक श्री ग्रिफिथ को जाता है। श्री ग्रिफिथ ने न्यूमोनिया के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए एक प्रयोग किया। उन्होंने देखा कि जब उष्मा द्वारा नष्ट निमोनिया के उग्र-बैक्टीरिया को निष्क्रिय या अनुग्र बैक्टीरिया के साथ चूहे के शरीर में प्रवेश कराते हैं तो निष्क्रिय बैक्टीरिया भी सक्रिय हो जाता है। जैसे कि दोनों बैक्टीरिया-स्पीशीज का आपस में संकरण हो गया हो।

परन्तु इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति 1972 में हुई जबकि यह देखा गया कि किसी एक जीव से डी.एन.ए. का एक टुकड़ा लेकर उसका दूसरे जीव के डी.एन.ए. के साथ संकरण करना शरीर से बाहर अर्थात् परखनली में संभव है। इस तकनीक को 'रिकाम्बिनेंट—डी.एन.ए.' या पुनर्योगज—डी.एन.ए. नाम दिया गया है। यहां पर नोबेल पुरस्कार विजेता पॉल बर्ग द्वारा किये गये उस प्रयोग का जिक्र करना भी रोचक होगा जिसने अमेरिका व यूरोप में तहलका मचा दिया। पॉल बर्ग ने

एस.बी.–40 नामक वाइरस या विषाणु के डी.एन.ए. को ई. कोली. नामक बैक्टीरिया में सफलतापूर्वक प्रतिस्थापित किया। फलस्वरूप एक ऐसे नये जीव की रचना हुई जिसमें दोनों के ही कुछ कुछ गुण उपस्थित हैं—सामान्य ई. कोली की तरह यह मनुष्य की आंतों में पनप सकता था और वाइरस की तरह कैंसर जैसे रोग को उत्पन्न कर सकता था। इस प्रकार एक नई तकनीक का जन्म हुआ, जिसे पुनर्योगज-डी.एन.ए. तकनीक नाम दिया गया है।

"पुनर्योगज-डी.एन.ए." तकनीक द्वारा कुछ विशिष्ट ऐंजाइमों की सहायता से किसी एक जीव के जीन का दूसरे के जीन के साथ संकरण सम्भव है और इस प्रकार प्राप्त संकरित जीन में दोनों ही जीवों के गुण उपस्थित होंगे।

पुनर्योगज–डी.एन.ए. अर्थात् दो भिन्न डी.एन.ए. अणुओं को जोड़ने की विधियाँ

जैसाकि ऊपर बताया गया है, जीन-इंजीनियरिंग की कुंजी दो भिन्न डी.एन.ए. अणुओं को जोड़ कर एक नवीन डी.एन.ए. तैयार करने में निहित है, जिसको पुनर्योगज डी.एन.ए. या रिकाम्बीनेंट-डी.एन.ए. कहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि पुनर्योगज डी.एन.ए. किस प्रकार तैयार करते हैं? इसके लिए मुख्यतः तीन विधियां प्रयुक्त की गई हैं।

प्रथम विधि–डी.एन.ए. की दो लड़ियों के अंतिम छोर पर नई डी.एन.ए. लड़ियाँ जोड़ कर

जैसाकि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, डी.एन.ए. अणु की दो

लड़ियों में सदैव A तथा T के मध्य और G तथा C के मध्य हाइड्रोजन बंध बनते हैं। अतः A व T को तथा G व C को "संयुग्मी बेस" कहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हम डी.एन.ए. की दो अलग-अलग ऐसी लड़ियां लें, जिनके बेस संयुग्मी हों तो इन लड़ियों को मिलाने पर वे संयुक्त होकर द्विकुंडलीय (डबल हैलीकल) संरचना बना लेगी अर्थात् एक नया जीन बन जायेगा। उदाहरण के रूप में लड़ी क व ख को मिश्रित करने पर वे संयुक्त हो जायेगी (चित्र 3.1)।

लड़ी क ~~ A—T—C—G—G—C—T—A—A ~~

+

लड़ी ख ~~ T—A—G—C—C—G—A—T—T ~~

↓ मिश्रित

~~ A—T—C—G—G—C—T—A—A ~~

~~ T—A—G—C—C—G—A—T—T ~~

नवीन जीन का एक अंश
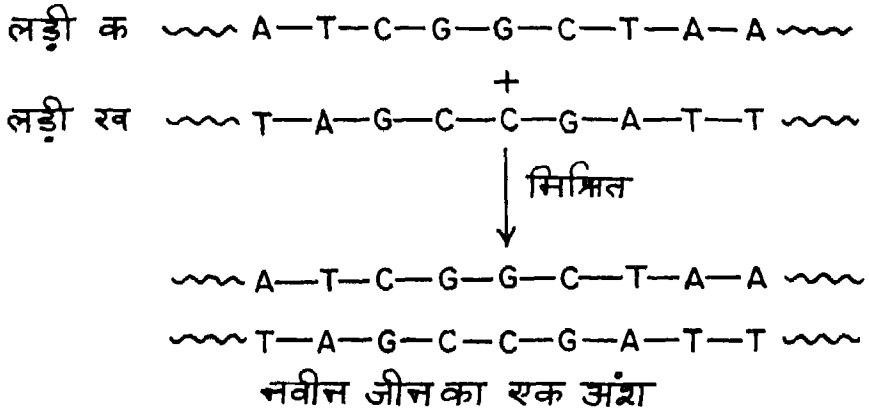
चित्र-3.1

इसका अथ यह हुआ कि यदि हम एक डी.एन.ए. के सिरे पर कुछ बेस संयुक्त कर दें तथा दूसरे डी.एन.ए. के सिरे पर प्रथम के संयुग्मी बेस संयुक्त कर दें और यदि अब इन दोनों स्पीशीज को मिलायें तो नई लड़ियां आपस में हाइड्रोजन बंध बना कर दो भिन्न डी.एन.ए. अणुओं को संयुक्त कर देगी। इसी विधि को पुनर्योगज–डी.एन.ए. तकनीक कहते हैं। इस कार्य के लिए एक विशिष्ट ऐंजाइम का उपयोग करते हैं जिसको 'टर्मिनल-ट्रांसफरेस' ऐंजाइम कहते हैं। इस ऐंजाइम की

विशेषता यह है कि यह डी.एन.ए. की लड़ी के सिरे पर क्रमशः एक-एक करके बेस जोड़ सकता है।

उदाहरण के रूप में डी.एन.ए. अणु "क" के सिरे पर मान लीजिए हम 'टर्मिनल ट्रांसफरेस' की सहायता से बेस T जोडते हैं–

T—T—T—T—T—C—G डी॰ एन॰ ए॰ 'क' T — C

G — C —— A—G—T—T—T—T—T
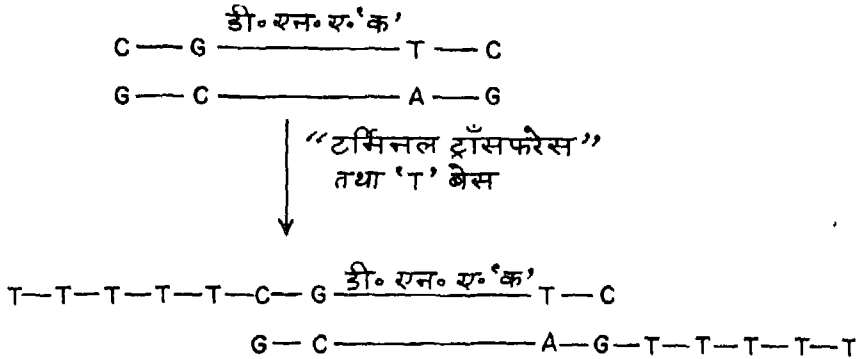
चित्र 3.2 – टर्मिनल ट्रांसफरेस की सहायता से डी.एन.ए. की दो लड़ियों के सिरों पर T बेस जोड़ना

अब मान लीजिए एक अन्य डी.एन.ए. अणु "ख" के सिरों "टर्मिनल ट्रांसफेरसं" की सहायता से बेस A संयुक्त कर देते हैं–
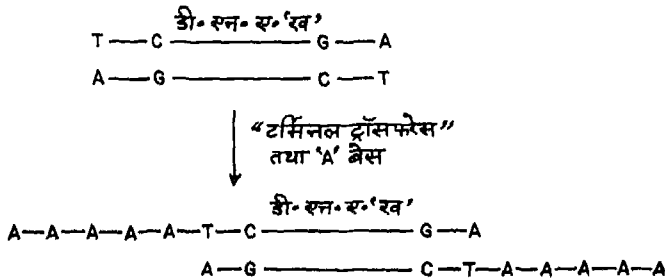
चित्र 3.3 – टर्मिनल ट्रांसफरेस की सहायता से डी.एन.ए. की दो लड़ियों के सिरों पर A बेस जोड़ना

जब इन दोनों नवनिर्मित डी.एन.ए. स्पीशीज को मिश्रित करते हैं तो संयुग्मी बेस "A" तथा "T" आपस में संयुक्त होने का प्रयत्न करते हैं जिसके कारण दोनों डी.एन.ए. अणु चित्र 3.4 की भांति संयुक्त हो जाते हैं।
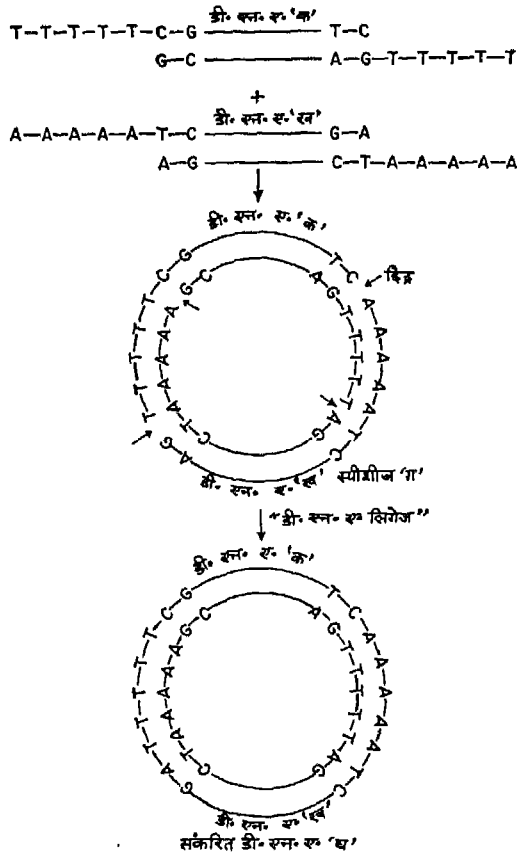
चित्र 3.4—पुनर्योगज डी.एन.ए. का संश्लेषण

इस प्रकार निर्मित स्पीशीज "ग" में अभी चार स्थानों पर जिन को तीर द्वारा दर्शाया गया है, छिद्र रह जाते हैं अर्थात् इन स्थानों पर लड़ियां संयुक्त नहीं होती। इन छिद्रों को पूरा करने के लिए "डी.एन.ए. लिगेज" नामक ऐंजाइम को प्रयुक्त करते हैं, जो इन स्थानों पर सहसंयोजी बंध बना कर पूर्णतः संकरित नये जीन "घ" का निर्माण कर देता है जो वास्तव में एक "पुनर्योगज डी.एन.ए." अणु है।

वास्तव में उपर्युक्त प्रक्रिया इतनी आसान नहीं होती जितनी कि यह प्रतीत होती है। सबसे कठिन कार्य डी.एन.ए. अणुओं व प्रयुक्त ऐंजाइमों को शुद्ध अवस्था में प्राप्त करना है।

द्वितीय विधि—नियंत्रण ऐंजाइमों के उपयोग द्वारा

इस विधि का मूल सिद्धांत भी पहली विधि के समान ही है, अर्थात् संयुग्मी बेस हाइड्रोजन बंध बना कर संकरित जीन का निर्माण करते हैं। परन्तु इस विधि में एक विशेष प्रकार के ऐंजाइम इस्तेमाल करते हैं जिसके कारण यह विधि अधिक विश्वसनीय हो जाती है। इस ऐंजाइम को नियंत्रण ऐंजाइम (Restriction enzyme) कहते हैं तथा इस प्रकार के करीब 100 ऐंजाइम प्राप्त कर लिये गये हैं। ये ऐंजाइम चाकू की तरह कार्य करते हैं तथा डी.एन.ए. अणु की लड़ियों को एक विशिष्ट बेस क्रम होने पर काट देते हैं।

नियंत्रण ऐंजाइम के कार्य को समझने के लिए हम ई. कोली बैक्टीरिया से प्राप्त ईको.आर.आइ. नामक नियंत्रण ऐंजाइम का उदाहरण लेते हैं।

यह ऐंजाइम डी.एन.ए. अणु में बेसों के निम्न क्रम को पहचान कर उसे बेस 'जी' तथा 'ए' के मध्य काट देता है (चित्र 3.5)।
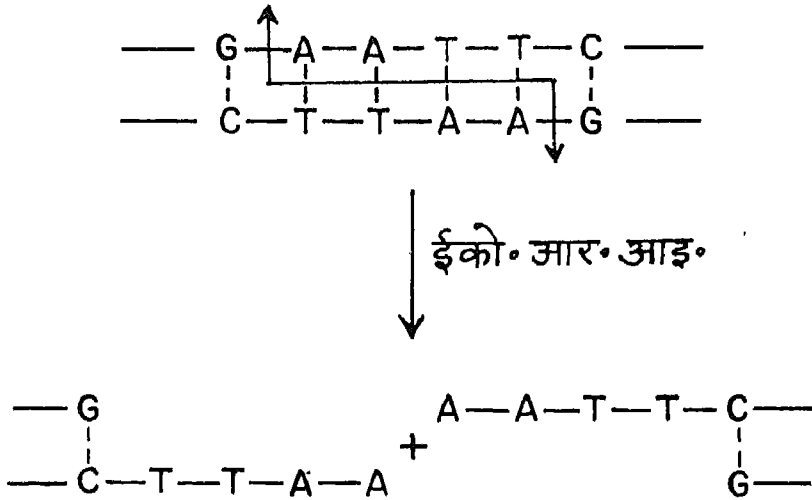
चित्र 3.5 – नियंत्रण ऐंज़ाइम द्वारा डी.एन.ए. का विभाजन

अब यदि भिन्न स्रोतों से प्राप्त ऐसे दो डी.एन.ए. टुकड़ों को मिला दें तो संयुग्मी बेस आपस में हाइड्रोजन बंध बना कर द्विकुंडलीय संरचना बना लेगें। परंतु इस प्रकार प्राप्त स्पीशीज में पुनः दो छिद्र होते हैं, डी.एन.ए.–लिगेज का उपयोग करने पर इन छिद्रों के स्थान पर बंध बन जायेंगे तथा पूर्णतः संकरित जीन प्राप्त होगा (चित्र 3.6)।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ईको.आर.आइ. और "डी.एन.ए. लिगेज" की सहायता से विभिन्न जीवों के जीनों को संयुक्त कर संकरित-जीन तैयार किये जा सकते हैं। संकरित जीन में दोनों ही जीवों के गुण उपस्थित होगें। जीन-इंजीनियरिंग के क्षेत्र में इन प्रयोगों की सफलता से अपरिमित संभावनाएं उपस्थित हो गयीं। यह प्रतीत होने लगा कि उन जीवों के संकर भी तैयार किये जा सकते हैं जिनमें बिल्कुल

---C—T—A—G—C—G---

---G—A—T—C—G—C—T—A—T—T—A----

(एक जीव के डी॰ एन॰ ए॰ से ईको॰ आर॰ आई॰ द्वारा काटा गया टुकड़ा)

+

--A—T—A—A—T—C—G—T—A--

G—C—A—T--

(दूसरे जीव के डी॰ एन॰ ए॰ से ईको॰ आर॰ आई॰ द्वारा काटा गया टुकड़ा)

छिद्र

---C—T—A—G—C—G A—T—A—A—T—C—G—T—A---

---G—A—T—C—G—C—T—A—T—T—A G—C—A—T--

"डी॰ एन॰ ए॰ लिगेज"

---C—T—A—G—C—G—A—T—A—A—T—C—G—T—A---

---G—A—T—C—G—C—T—A—T—T—A—G—C—A—T---

नवीन संकरित डी॰ एन॰ ए॰
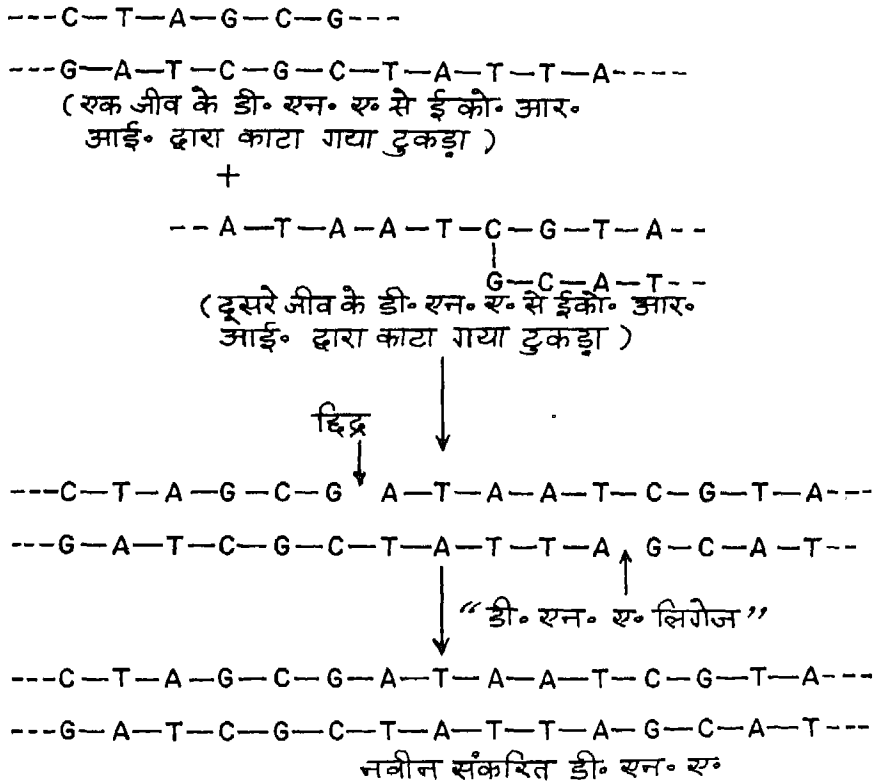
चित्र 3.6 – ईको.आर.आई. की सहायता से पुनर्योगज डी.एन.ए. का निर्माण

भी समानता नहीं है। उदाहरण के रूप में चूहे व बन्दर का संकर। इसी प्रकार संतरे व कबूतर का संकर, इत्यादि। यह सर्वविदित है कि धार्मिक व सामाजिक कारणों से प्राचीनकाल से ही मनुष्य जाति के कुछ रिश्तों के मध्य शादी-विवाह वर्जित है। परन्तु "पुनर्योगज-डी.एन.ए." तकनीक

द्वारा ऐसे मनुष्यों का संकर रूप भी उत्पन्न किया जाना सम्भव प्रतीत होने लगा है।

वास्तव में, यदि गहराई से विचार करें तो वनस्पति जगत् में ही नहीं अपितु जन्तुओं में भी नस्ल सुधार के इस प्रकार के प्रयोग किये जाते रहे हैं जिनसे पौधों की नई-नई किस्में तथा जन्तुओं, विशेष रूप से दुधारू पशुओं की उन्नत नस्ल उत्पन्न की जाती रही है। परन्तु "पुनर्योगज-डी.एन.ए." तकनीक से तो इस प्रक्रिया का क्षेत्र इतना विशाल प्रतीत होने लगा कि कोई भी दो जीवों के संकरण तैयार किये जा सकते हैं। यही नहीं, पौधों व जन्तुओं के संकरण तैयार करना भी संभव प्रतीत होने लगा।

इन सब संभावनाओं ने एक भयावह चित्र प्रस्तुत कर दिया। यह शंका व्यक्त की गई कि अनजाने में कहीं ऐसे जीवाणुओं के जीन उत्पन्न न हो जायें जो ऐसी महामारी फैला दें जिसका उपचार अभी तक ज्ञात न हो तथा आनन-फानन में मनुष्यजाति नष्ट हो जाये। कहीं ऐसे जीवाणु न उत्पन्न हो जायें जो समस्त विश्व के पैट्रोल को ही पी डालें। इससे भी बढ़कर यह खतरा अनुभव किया गया कि कहीं कोई तानाशाह ऐसी फौज तैयार न कर दें जो विश्व को ही अपना दास बना लें या दूसरे शब्दों में जीन-प्रयोगशालाओं से फ्रांकेनस्टाइन* या भस्मासुर**सदृश राक्षस बन कर निकलें जो अपने रचयिताओं को ही नष्ट कर दें। यही कारण था कि नोबेल पुरस्कार विजेता श्री पॉल बर्ग ने जो "पुनर्योगज-डी.एन.ए." तकनीक के जनकों में थे, संयुक्त राज्य अमेरिका की "नेशनल

****फ्रांकेनस्टाइन**—ऐसा काल्पनिक चरित्र जो अपने जनक को ही नष्ट कर दे।

***भस्मासुर**—पौराणिक कथाओं का एक ऐसा चरित्र जिसने तपस्या कर भगवान् शंकर से यह वरदान प्राप्त कर लिया कि वह जिसके सिर पर हाथ रख देगा, वही भस्म हो जायेगा। अंत में उसका अहंकार इतना बढ़ गया कि वह भगवान् शंकर को ही भस्म करने के लिए उतावला हो गया।

इन्स्टीट्यूट ऑफ हैल्थ" नामक संस्था को लिख कर यह अनुरोध किया कि इस प्रकार के शोधकार्य पर कुछ समय के लिए प्रतिबंध लगा दिया जाये तथा इस विषय में कुछ नियम बनाये जायें। उसी के अनुरूप उपर्युक्त संस्था ने "पुनर्योगज-डी.एन.ए." के क्षेत्र में शोध के कुछ नियम निर्धारित किये।

परन्तु अधिक गहराई से विचार करने पर उपर्युक्त धारणाएं काफी हद तक निर्मूल साबित हुई। जीवों, विशेष रूप से उच्च जीवों की कोशिकाओं में डी.एन.ए. अणुओं की इतनी विशाल मात्रा रहती है कि "पुनर्योगज-डी.एन.ए." तकनीक द्वारा कोई उपयोगी संकरण बनाना प्रतीत नहीं होता। यही कारण है कि इस तकनीक का अब तक प्रयोग बैक्टीरिया विशेष रूप से ऐशिरिकीआ कोली पर किया गया है तथा कुछ उपयोगी प्रक्रियाओं को विकसित किया गया है। इसको समझने के लिए अब हम जीन-इंजीनियरिंग के एक अन्य पहलू पर विचार करते हैं।

तीसरी विधि—क्लोनिंग

जैव-तकनीक की दृष्टि से यह विधि सर्वाधिक सरल अतः सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। इसका विकास सर्वप्रथम 1973 में किया गया।

कोशिकाओं में डी.एन.ए. का पुनर्लिपिकरण (Replication) तभी होता है, जब यह एक विशेष जीन से संयुक्त रहता है। यह जीन ही "पुनर्लिपिकरण" का आदेश देता है, तभी डी.एन.ए. का अनुलिपिकरण होता है, अर्थात् उस जैसा ही दूसरा डी.एन.ए. अणु बन जाता है। कोशिका में इन "पुनर्लिपिकरण-जीनों" की संख्या बहुत कम होती है। उदाहरण के रूप में कुछ जीवाणुओं के क्रोमोसोम में यद्यपि 3000 से 5000 तक जीन होते हैं परन्तु उनमें "पुनर्लिपिकरण-जीन" एक ही होता है।

इस "पुनर्लिपिकरण-जीन" की एक और विशेषता होती है। यदि इस जीन को इसके मूल डी.एन.ए. से अलग कर किसी अन्य डी.एन.ए. के साथ जोड़ दिया जाए तो यह दूसरे डी.एन.ए. का ही पुनर्लिपिकरण करने लगता है। इस जीन के इसी गुण का उपयोग जैव-तकनीक में किया गया है।

कुछ बैक्टीरियाओं में छोटे वृत्ताकार डी.एन.ए. अणु होते हैं, जिनमें स्वयं पुनरावृत्ति की क्षमता होती है। इन वृत्ताकार डी.एन.ए. अणुओं को प्लैसमिड (Plasmids) कहते हैं। प्रत्येक प्लैसमिड में "पुनर्लिपिकरण-जीन" उपस्थित रहता है। यही कारण है कि ऐसी बैक्टीरीय-कोशिका (जिसमें प्लैसमिड रहता है) उपयुक्त संवर्धन माध्यम में तेजी से बढ़ती है तथा कुछ ही समय में इस प्रकार की अरबों कोशिकाएं बन जाती हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि अरबों कोशिकाओं में से प्लैसमिड को किस प्रकार छांटा जाये। वैज्ञानिकों ने इसका बड़ा आसान तरीका विकसित किया है। इन प्लैसमिडों में "पुनर्लिपिकरण-जीन" के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट जीन भी होते हैं। उदाहरण के रूप में, कुछ प्लैसमिडो में ऐसा जीन होता है जो इस प्रकार का ऐंजाइम उत्पन्न करता है जो पेनिसिलीन-सदृश ऐंटिबायोटिक को नष्ट कर दे। ऐसे प्लैसमिड पर पेनिसिलीन का कोई प्रभाव नहीं होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि ऐसे बैक्टीरिया को पेनिसिलीन-युक्त माध्यम से पोषित करें तो केवल प्लैसमिड ही जिन्दा रहेगें (क्योंकि उनमें ऐसा जीन है जो पेनिसिलीन को नष्ट कर देता है) शेष सभी कोशिकाएं मर जायेंगी। इस विधि से अरबों कोशिकाओं में से भी प्लैसमिडो को अलग किया जा सकता है।

अब आइये देखें कि प्लैसमिड का उपयोग जैव-तकनीक में किस प्रकार करते हैं?

हम पिछले अध्याय में यह देख चुके हैं कि शरीर में प्रत्येक पदार्थ के संश्लेषण के लिए कोई निश्चित जीन जिम्मेदार है। अब यदि इस विशिष्ट जीन को प्लैसमिड के साथ उपर्युक्त विधि द्वारा संकरित कर दिया जाये तथा इस प्रकार निर्मित संकरित डी.एन.ए. को पुनः बैक्टीरीय-कोशिका में स्थापित कर उपयुक्त संवर्धन-माध्यम में पनपने दें तो यह देखा गया कि इस बैक्टीरिया में भी वह जीन वही पदार्थ संश्लेषित करता है जो कि वह मानव-कोशिका में करता था। इस समस्त प्रक्रिया को ही **क्लोनिंग** कहते हैं। पोषी-बैक्टीरिया के रूप में साधारणतः ई.कोली बैक्टीरिया का उपयोग किया जाता है। क्लोनिंग को चित्र 3.7 में दर्शाया गया है।

वास्तव में, क्लोनिंग की तुलना जिराक्स से की जा सकती है। उदाहरण के रूप में, मान लीजिये एक छपे हुए पृष्ठ में बीच में कुछ वाक्य जोड़ने हैं। उसके लिए हम पृष्ठ को उस स्थान से काट लेते हैं तथा बीच में वाक्य जोड़ कर पृष्ठ को पुनः चिपका देते हैं। अब इस पृष्ठ की जिराक्स करने पर जो प्रति प्राप्त होगी, उसमें वाक्य ऐसा ही प्रतीत होगा जैसे कि यह प्रारंभ से ही इसका भाग हो।
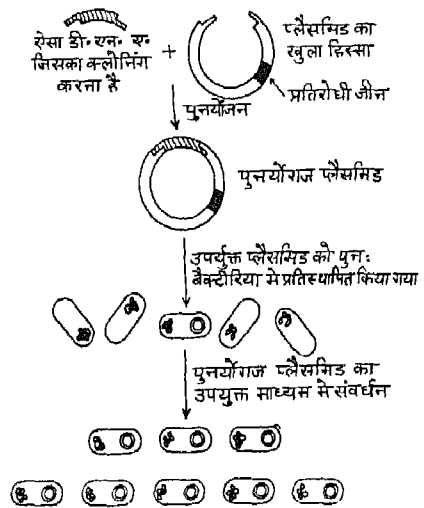
चित्र 3.7 – प्लैसमिड द्वारा क्लोनिंग

क्लोनिंग द्वारा सर्वप्रथम इंसुलिन को 1982 में प्राप्त किया गया जो अब "ह्यूमिलिन" के नाम से बिकती है। इंसुलिन की ई. कोली बैक्टीरिया द्वारा क्लोनिंग को निम्न चित्र 3.8 में दर्शाया गया है–
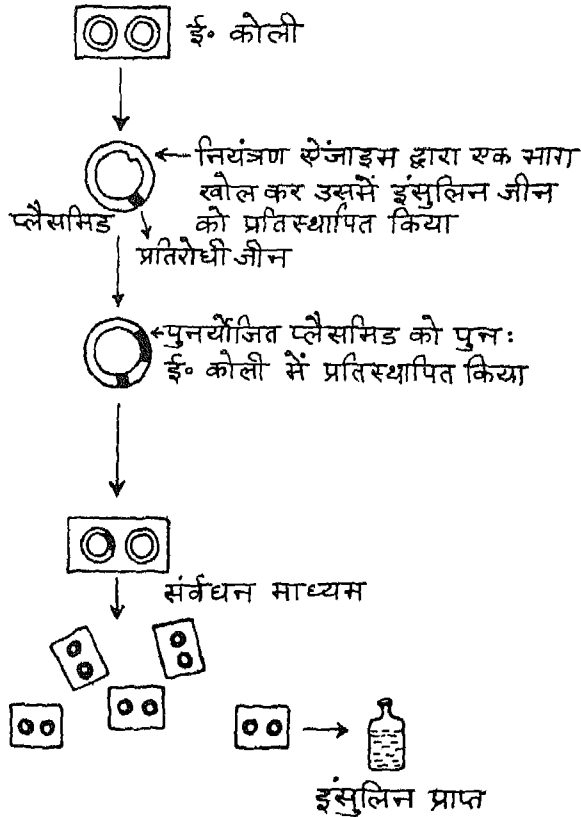
चित्र 3.8 – इंसुलिन का क्लोनिंग द्वारा उत्पादन

क्लोनिंग द्वारा ही बौनेपन के इलाज के लिए आवश्यक हार्मोन (HGH, Humans Growth Harmone) 'जिसे ह्यूमन ग्रोथ हारमोन कहते हैं', प्राप्त कर लिया गया है तथा अनेक अन्य पदार्थ प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है जिसके बारे में हम अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि क्लोनिंग द्वारा प्राप्त सभी कोशिकाओं में केवल एक ही प्रकार के जीन रहते हैं। यह प्रक्रिया माता-पिता से उत्पन्न संतान या ग्राफ्टिंग से प्राप्त पौधे से बिल्कुल विपरीत है क्योंकि माता-पिता से उत्पन्न संतान में दोनों के ही जीन होते हैं तथा इसी प्रकार ग्राफ्टिंग से प्राप्त पौधे में दोनों पौधों के गुण होते हैं। वास्तव में, क्लोनिंग की तुलना कटिंग से तैयार पौधे या अलैंगिक जनन (Asexual reproduction) से की जा सकती है।

जन्तुओं में क्लोनिंग करना यद्यपि अत्याधिक कठिन कार्य है परन्तु मेंढक के भ्रूण की कोशिका की क्लोनिंग कर मेंढक उत्पन्न किया गया है। यहां पर यह स्पष्ट करना उचित होगा कि पूर्णत: विकसित मेंढक की कोशिका की क्लोनिंग द्वारा मेंढक उत्पन्न करना अभी तक सम्भव नहीं हो पाया है।

उपर्युक्त वर्णन से यह प्रश्न उठता है कि क्या मानव कोशिका की क्लोनिंग सम्भव हो सकती है, यदि हां तो यह बड़ा ही भयावह चित्र उपस्थित कर देती है क्योंकि फिर तो राक्षसों की फौज तैयार की जा सकती है। यही कारण था कि नोबेल पुरस्कार विजेता पाल बर्ग ने, जो "पुनर्योगज-डी.एन.ए." तकनीक के विकसित करने वालों में से एक हैं, संयुक्त राज्य अमेरिका की "नैशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ हैल्थ" नामक संस्था को लिख कर अनुरोध किया कि इस प्रकार के शोध कार्य पर कुछ समय के लिए प्रतिबंध लगा दिया जाये तथा इस विषय में कुछ नियम

बनाये जायें। उसी के अनुरूप उपर्युक्त संस्था ने "पुनर्योजन-डी.एन.ए." के क्षेत्र में शोध के कुछ नियम निर्धारित किये। बाद में हमारे देश की संस्था भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने भी इस कार्य के लिए एक कमेटी बनायी तथा उसने भी कुछ नियम निर्धारित किये।

परन्तु अधिक गहराई से विचार करने पर यह पाया गया कि मानव-कोशिका की क्लोनिंग कर कृत्रिम मानव तैयार करना लगभग असम्भव है। क्यों? क्योंकि, जैसा पहले बताया जा चुका है, मानव कोशिका में 30-40 लाख जीन होते हैं, जबकि क्लोनिंग द्वारा हम केवल 40-50 जीनों को ही नियंत्रित रूप में उत्पन्न कर सकते हैं। वास्तव में क्लोनिंग द्वारा मनुष्य उत्पन्न करने का प्रयत्न करना ठीक वैसा ही हुआ जैसाकि कबाड़ी की दुकान में घुस पर आप 4-5 पुर्जे उठा कर कार का इंजिन तैयार करना चाहें।

□□□

4

जैव-तकनीक के उपयोग

पिछले अध्यायों में जैव-तकनीक के कुछ आधारभूत सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। अब आइये जरा इस पर भी गौर करें कि वैज्ञानिकों ने इस तकनीक का किस-किस क्षेत्र में उपयोग किया है तथा भविष्य में इस तकनीक से क्या-क्या आशाएं की जा सकती हैं।

प्रारंभ में तो जैव-तकनीक की सफलता से यह प्रतीत होने लगा, जैसे मनुष्य जाति को वास्तव में अलादीन का चिराग मिल गया या कहिये कामधेनु गाय मिल गयी, जिससे जो चाहो मिल जाये। यही कारण था कि सत्तर के दशक में अमेरिका तथा यूरोप की बड़ी-बड़ी कम्पनियां इस तकनीक की सहायता से औषधियों व अन्य पदार्थों के उत्पादन के लिए अरबों डालर लगाने के लिए तैयार हो गईं और उनमें इस बात की होड़ लग गयी कि कौन सबसे पहले बड़े-बड़े वैज्ञानिकों से अनुबन्ध कर ले। परन्तु जब कल्पनाएं वास्तविकता के धरातल पर आने लगी तो इस तकनीक की सीमाएं भी दिखाई देने लगी तथा छोटी कम्पनियों का साहस

ठंडा पड़ने लगा। इसी के साथ एक दूसरा पहलू भी आंखों के सामने उभरने लगा—इस तकनीक द्वारा भयंकर-विनाश की सम्भावनाएं। अब तो पूरे विश्व में इस बात पर ही बहस छिड़ गयी कि जैव-तकनीक मानव जाति के लिए उपयोगी है या विनाशकारी। दोनों ही पक्ष अपनी-अपनी बात बढ़ा-चढ़ा कर कहने लगे।

इस अध्याय में हम जैव-तकनीक के दोनों ही पक्षों का संक्षेप में वर्णन करेंगे। परन्तु गहराई से विचार करने पर पलड़ा उपयोगी-पक्ष का ही भारी लगता है।

जैव-तकनीक की औषध जगत् में विपुल सम्भावनाएं प्रतीत होती हैं। इसके अतिरिक्त यह भी आशा की जाती है कि अनेक उपयोगी रसायन पदार्थ आसानी से इस विधि से संश्लेषित किये जा सकते हैं। कृषि के क्षेत्र में भी इस तकनीक को प्रयुक्त करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण सम्भावना है—जीन-चिकित्सा की, जिसकी सहायता से ऐसा लगता है, भविष्य में आनुवांशिक—रोगों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। इन सभी क्षेत्रों में जैव-तकनीक के सम्भावित उपयोगों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

1. जैव-तकनीक का औषध-निर्माण में उपयोग

क. प्रोटीनों व हारमोनों का संश्लेषण

मानव-शरीर में कुछ उतकों में ऐसी प्रोटीन उत्पन्न होती है जो शरीर की कुछ विशिष्ट क्रियाओं पर नियंत्रण रखती है। इन प्रोटीनों के संश्लेषण में गड़बड़ उत्पन्न होने पर शरीर रोगी हो जाता है। ऐसी दशा में इन प्रोटीनों को औषधियों के रूप में रोगी को देना आवश्यक हो जाता है। इसको स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम इंसुलिन का उदाहरण

लेते हैं। अग्नाशय की कुछ कोशिकाओं में इंसुलिन उत्पन्न होती है जो रक्त में शर्करा की मात्रा को नियंत्रित रखती है। परन्तु मधुमेह के रोगियों में इंसुलिन पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न नहीं होती, जिसके कारण उनको औषधि के रूप में इंसुलिन देनी पड़ती है। यही कारण है कि इंसुलिन को काफी अधिक मात्रा में संश्लेषित करना पड़ता है। संश्लेषण-विधि जटिल होने के कारण इंसुलिन काफी महंगी होती है। यही कहानी मानव शरीर में उत्पन्न कुछ अन्य प्रोटीन-औषधियों की है, जैसे—मानव-वृद्धि हारमोन (ह्यूमन ग्रोथ हारमोन), इंटरफेरॉन, रेनिन आदि।

इस संदर्भ में वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर गया कि यदि ये प्रोटीन मानव-शरीर में उत्पन्न होती हैं, तो स्वाभाविक रूप से कुछ विशिष्ट जीन ही इन प्रोटीनों के संश्लेषण के लिए जिम्मेदार हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि इन विशिष्ट जीनों को प्राप्त कर लिया जाये तो क्या क्लोनिंग द्वारा (देखें पिछला अध्याय) इन प्रोटीनों को कृत्रिम रूप से संश्लेषित किया जा सकता है। इस प्रकार जीन-इंजीनियरिंग विधि से तैयार कुछ बैक्टीरिया फैक्ट्री की तरह कार्य करने लगते हैं और इनकी सहायता से बहुत कम लागत में अनेक औषधियां तैयार की जा सकती है।

1982 में जैव-तकनीक द्वारा सर्वप्रथम इंसुलिन प्राप्त करने में सफलता मिली। इस प्रकार संश्लेषित इंसुलिन का व्यापारिक नाम ''ह्यूमूलिन'' दिया गया।

कुछ व्यक्ति बौने होते हैं, इसका कारण उनमें एक विशिष्ट

हारमोन—शरीर में बनने वाले वे पदार्थ हैं जो कुछ विशिष्ट शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

हारमोन की कमी है जिसको ह्यूमैन ग्रोथ हारमोन (मानव-वृद्धि हारमोन) कहते हैं। यह शरीर में इतनी अल्प मात्रा में होता है कि इसको किसी बौने के इलाज के लिए पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करना बड़ा कठिन कार्य है। परन्तु हाल ही में क्लोनिंग द्वारा इस हारमोन को संश्लेषित करने में सफलता मिल गई है।

ख. इण्टरफेरॉन व अन्य प्रतिरक्षी (ऐण्टिबॉडी) प्रोटीनों का संश्लेषण

इण्टरफेरॉन एक महत्वपूर्ण ऐण्टिबॉडी-प्रोटीन है। लेकिन ऐण्टिबॉडी प्रोटीन है क्या? प्रकृति ने हमारे शरीर में ही इस प्रकार की प्रतिरोधी-क्षमता उत्पन्न की है कि वह स्वयं ही अनेक प्रकार के रोगों का सामना कर सकता है। वास्तव में जब रोगाणु (वाइरस या बैक्टीरिया) शरीर के किसी भाग पर आक्रमण करता है तो तुरन्त ही उस भाग की कोशिकाएं ऐसा पदार्थ संश्लेषित करना प्रारंभ कर देती हैं जो अन्य स्वस्थ कोशिकाओं से जुड़ कर उन्हें रोगी होने से बचाता है। इन्हीं पदार्थों को ऐण्टिबॉडी कहते हैं तथा ये शर्करा-युक्त प्रोटीन होते हैं। इण्टरफेरॉन महत्वपूर्ण ऐण्टिबॉडी है।

अब प्रश्न यह उठता है कि शरीर में ऐण्टिबॉडी बनते किस प्रकार हैं? होता यह है कि वाइरस में उपस्थित कोई विशिष्ट जीन मनुष्य-कोशिका या पोषी-कोशिका को उत्प्रेरित करता है जिसके कारण वह कोशिका एक विशिष्ट ऐण्टिबॉडी का संश्लेषण करने लगती है। यह ऐण्टिबॉडी वाइरस के आक्रमण का प्रतिरोध करती है तथा शरीर स्वस्थ बना रहता है। इस समस्त क्रिया को चित्र 4.1 में दर्शाया गया है।

इसका अर्थ यह हुआ कि यदि वाइरस में उपस्थित उस जीन को पृथक कर दिया जाये जो पोषी कोशिका में ऐण्टिबॉडी को उत्प्रेरित करता है तो प्लैसमिड में इस जीन को प्रतिस्थापित कर क्लोनिंग द्वारा
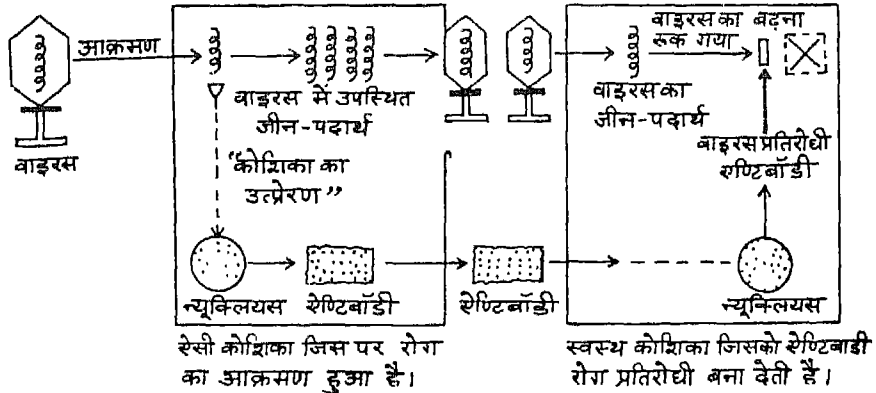
चित्र 4.1 – शरीर में ऐंटिबॉडी-पदार्थ के निर्माण की प्रक्रिया

विभिन्न ऐण्टिबॉडी संश्लेषित किये जा सकते हैं। वास्तव में इस तकनीक द्वारा इण्टरफेरॉन संश्लेषित किये जा चुके हैं तथा अन्य अनेक ऐण्टिबॉडी-पदार्थों को संश्लेषित करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

देखा गया है कि कई वाइरस इण्टरफेरॉन-ऐण्टिबॉडी ही उत्पन्न करते हैं। इससे लगता है कि इण्टरफेरानों के उपयोग द्वारा शरीर में अनेक रोगों के प्रति प्रतिरोधी-क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। यह भी आशा की जाती है कि शायद इस तकनीक द्वारा कैंसर जैसे भयंकर रोग पर भी नियंत्रण करना सम्भव हो जाये।

ग. टीकों (Vaccines) का निर्माण

अनेक बीमारियों, जैसे चेचक, डिप्थीरिया, टिटेनस व पोलियो आदि की रोकथाम के लिए टीके लगाये जाते हैं। परन्तु इन टीकों को तैयार करने की वर्तमान विधि काफी कठिन एवं खर्चीली है। आशा की

जाती है कि क्लोनिंग द्वारा न केवल इन रोगों के टीकों को, अपितु अनेक अन्य रोगों के टीकों को भी बहुत कम खर्च पर तैयार किया जा सकता है।

घ. ऐण्टिबायोटिक-पदार्थों का निर्माण

आशा की जाती है कि जैव तकनीक द्वारा न केवल पहले से ज्ञात ऐण्टिबायोटिक ·औषधियों को कम मूल्य पर प्राप्त करना सम्भव है, अपितु अनेक नये ऐण्टिबायोटिक-पदार्थों को भी संश्लेषित कर सकते हैं।

ड. दर्द-निवारक औषधियों का संश्लेषण

यह ज्ञात हुआ है कि हमारे मस्तिष्क में मार्फीन-सम्बन्धित यौगिकों का संश्लेषण होता है। हम जानते हैं कि ये यौगिक प्रभावशाली रूप से दर्द खत्म करते हैं तथा नींद लाते हैं। मस्तिष्क में इन यौगिकों की उपस्थिति एक महत्वपूर्ण व आश्चर्य जनक खोज है। इससे यह सम्भावना व्यक्त की गई है कि जीन-तकनीक द्वारा अत्यन्त प्रभावशाली दर्द-निवारक औषधियां तैयार की जा सकती हैं जो ऐसपिरीन तथा मार्फीन का स्थान ले सकती हैं।

2. ईंधन व रसायन पदार्थों का उत्पादन

शर्करा के यीस्ट द्वारा किण्वन से एथेनॉल का उत्पादन प्राचीनकाल से किया जाता रहा है। वास्तव में, यह भी जैव तकनीक का ही एक अंग है। किन्तु जीन-इंजीनियरिंग का विकास होने के कारण यह सम्भव लगता है कि इस प्रक्रिया को और भी अधिक तेजी से किया जा सकता है और साथ ही सैल्युलोस-युक्त पदार्थों से भी ऐल्कोहॉल प्राप्त कर सकते हैं। यीस्ट के जीनों को सैल्युलोस-युक्त पदार्थों में प्रतिस्थापित कर यह कार्य किया जाना सम्भव प्रतीत होता है। इसी तरह से यह आशा की

जाती है कि जैव तकनीक की सहायता से सैल्युलोसयुक्त अपद्रव्यों से अनेक ऐमीनों अम्लों, ऐसीटोन, ऐसीढिक अम्ल, ब्यूटेनॉल सदृश उपयोगी रसायनों का उत्पादन निकट भविष्य में सम्भव हो जायेगा।

प्राकृतिक गैस के रूप में मेथेन का ईंधन के लिए उपयोग किया जाता है। वास्तव में कुछ सूक्ष्म जीव (microorganisms) कार्बोहाइड्रेटों, वसाओं व प्रोटीन पदार्थों को वायुहीन (Anaerobic) प्रक्रिया द्वारा मेथेन में परिवर्तित कर देते हैं जो प्राकृतिक गैस के रूप में प्राप्त होती है। ऐसी आशा की जाती है कि मेथेन-उत्पादक जीवाणुओं में इस कार्य से संबंधित जीनों को पृथक् किया जा सकता है जिनको सैल्युलोस-युक्त अपद्रव्यों में प्रतिस्थापित करने पर मेथेन का उत्पादन विपुल मात्रा में संभव हो जायेगा तथा ऊर्जा के नये स्रोत विकसित किये जा सकेंगे।

3. जैव-तकनीक का कृषि में उपयोग

कृषि उत्पादन मुख्यत: दो विधियों द्वारा बढ़ाया जाता है—पौधों की अच्छी संकर-किस्में तैयार करके, जो अधिक उत्पादन दे तथा उर्वरकों का इस्तेमाल कर।

पौधों की संकर-किस्मों को विकसित करने की दो विधियों से हम सभी परिचित हैं—पर-परागण (क्रॉस पॉलिनेशन) तथा रोपण (ग्राफ्टिंग)। इन विधियों को वनस्पति-शास्त्री हजारों वर्षों से इस्तेमाल कर रहे हैं। परन्तु इन दोनों ही विधियों में कुछ कमियां है। पर-परागण तथा ग्राफ्टिंग एक ही स्पीशिज के पौधों के मध्य सफल होते हैं। उदाहरण के रूप में आप केवल गुलाब की दो किस्मों के बीच ही ग्राफ्टिंग कर सकते हैं। यह सम्भव नहीं कि गुलाब व डहेलिया के मध्य ग्राफ्टिंग कर दें। इसी प्रकार गेहूं की दो किस्मों के मध्य पर-परागण द्वारा तीसरी संकर

किस्म तैयार कर सकते हैं, परन्तु गेहूं व चावल के मध्य संकरण करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त दोनों विधियां ही काफी धीमी है। संकर-किस्म में एक नया गुण उत्पन्न करने में ही काफी समय लग जाता है।

जीन-इंजीनियरिंग द्वारा अब किसी पौधे में नये गुण कुछ ही दिनों में उत्पन्न किये जा सकते हैं। यही नहीं अब इस तकनीक द्वारा विभिन्न स्पीशीज के पौधों के संकर भी तैयार कर सकते हैं। यह भी आशा की जाती है कि जैव-तकनीक द्वारा हम शीघ्र ही ऐसे पौधों की किस्में तैयार कर लेगें जिनको बहुत कम सिंचाई की आवश्यकता हो ताकि सूखे-क्षेत्रों में भी खेती की जा सके। सम्भवत:, ऐसी किस्में भी विकसित की जा सके जिनको बहुत कम खाद की आवश्यकता पड़े।

कृषि-क्षेत्र में दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न है, उर्वरक का। बिना उर्वरक के अधिक अन्न पैदा करना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि कृषि-उत्पादन बढ़ाने के लिए नाइट्रोजन-युक्त उर्वरक बनाने के कारखाने खोलना आवश्यक है। परन्तु दूसरी ओर वायुमंडल नाइट्रोजन का असीम भण्डार है। स्वाभाविक रूप से वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में यह प्रश्न घूमता रहा है कि क्या वायुमंडल की नाइट्रोजन को उर्वरक के रूप में इस्तेमाल करने का कोई आसान तरीका विकसित नहीं किया जा सकता? लगता है, निकट भविष्य में जीन-इंजीनियरिंग द्वारा यह सम्भव हो जायेगा। परन्तु कैसे? यदि आप मटर के पौधे को उखाड़ कर देखें तो पायेंगे कि उसकी जड़ों में छोटी-छोटी गांठे होती हैं मटर ही नहीं अपितु इस प्रकार की गांठें सभी फलीदार पौधों की जड़ों में होती हैं। इन पौधों को लेग्यूम कहते हैं। जड़ों में स्थित ये गाँठे बड़ी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनमें ऐसे बैक्टीरिया रहते हैं जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन को उर्वरक में बदल देते हैं। इन बैक्टीरिया को नाइट्रोजन-यौगिकीकरण बैक्टीरिया

कहते हैं। यही कारण है कि इन पौधों को खाद की आवश्यकता नहीं पड़ती। अब प्रश्न उठता है कि केवल ये बैक्टीरिया ही क्यों वायुमंडलीय नाइट्रोजन को उर्वरक में बदलते हैं? स्पष्ट है कि इन बैक्टीरियाओं में कोई ऐसा जीन उपस्थित है जो इस कार्य को सम्पन्न करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि इस जीन को पृथक् कर लिया जाय तो क्लोनिंग द्वारा ऐसे पौधे उत्पन्न किये जा सकते हैं जो स्वयं ही अपने लिए उर्वरक उत्पन्न कर लें।
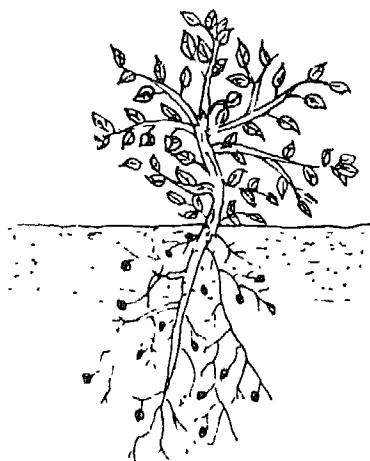
चित्र 4.2 – फलीदार पौधों की जड़ों में स्थित गांठें

उदाहरण के रूप में गेहूं व चावल के पौधों की जड़ों में नाइट्रोजन-यौगिकीकरण बैक्टीरिया नहीं होते। परन्तु जीन-इंजीनियरिंग के विकास से अब यह सम्भव लगने लगा है कि गेहूं व चावल जैसे महत्वपूर्ण अनाजों की ऐसी किस्में विकसित की जा सकती हैं जिनके लिए उर्वरकों की आवश्यकता ही न हो। यद्यपि अभी तक नाइट्रोजन-यौगिकीकरण बैक्टीरिया को केवल यीस्ट में ही प्रतिस्थापित किया जा सका है और ये प्रयोग गेहूं, चावल जैसे पौधों में सफल नहीं हुए हैं, परन्तु वैज्ञानिकों ने आशाएं नहीं छोड़ी हैं।

4. जीन-चिकित्सा

शरीर की प्रत्येक क्रिया को एक विशिष्ट प्रोटीन ही नियंत्रित करती है तथा प्रत्येक प्रोटीन का संश्लेषण एक विशिष्ट जीन के आदेश पर ही

होता है। मान लीजिये इस जीन में किसी कारण कोई गड़बड़ हो गई अर्थात् इसके बेसों का विशिष्ट क्रम बिगड़ गया। यह कारण कुछ भी हो सकता है—जैसे विकिरण तथा कुछ जहरीले रासायनिक पदार्थ आदि। जीन की विशिष्ट संरचना में गड़बड़ी को म्यूटेशन कहते हैं। अब यह त्रुटिपूर्ण जीन उस विशिष्ट प्रोटीन को संश्लेषित करने का आदेश नहीं दे पायेगा जो यह अभी तक कर रहा था। अब इसका परिणाम यह होगा कि वह शारीरिक क्रिया रूक जायेगी जो इस प्रोटीन के कारण होती थी। इसके स्थान पर अब कोई हानिकारक क्रिया प्रारंभ हो सकती है।

म्यूटेशन की सम्भावना सबसे अधिक उन कोशिकाओं में होती है जो निरन्तर विभक्त होती रहती हैं। जैसे पुरुष में शुक्राणु व महिलाओं में डिम्ब बनाने वाली कोशिकाएं। इनमें म्यूटेशन होने का अर्थ होगा कि सन्तान को ये विकृत जीन या क्रोमोसोम मिलेंगे तथा उनमें रोग उत्पन्न हो जायेगा।

उपर्युक्त विवरण के सन्दर्भ में दो प्रश्न उठते हैं—यदि किसी व्यक्ति में किसी जीन के म्यूटेशन के कारण कोई रोग उत्पन्न होता है तो क्या यह सम्भव है कि उस जीन की मरम्मत कर दी जाये ताकि वह पुनः ठीक प्रकार कार्य कर सके। दूसरे यह कि क्या इस त्रुटिपूर्ण जीन को सन्तान में जाने से रोका जा सकता है ताकि आनुवांशिक रोग उत्पन्न न हों? जीन की मरम्मत कर रोगों की रोकथाम करने को ही **जीन-चिकित्सा** कहते हैं। दूसरी ओर विभिन्न तरीकों से सन्तान के आनुवांशिक-गुणों को सुधारने की पद्धति को सृजनन (eugenics) कहते हैं।

आइये पहले देखें कि उस व्यक्ति की स्वयं की चिकित्सा कैसे की जा सकती है जिसमें किसी जीन के म्यूटेशन के कारण कोई रोग उत्पन्न हो गया है। अच्छा तो यह होगा कि उस जीन को बदल दिया जाय,

अर्थात् डी.एन.ए. के उतने भाग को (जितने में वह जीन है) काट कर अलग किया जाय तथा उसके स्थान पर सही टुकड़ा जोड़ दिया जाय। यह कार्य तो ऐसा हुआ जैसे किसी पाइप-लाइन का कुछ हिस्सा खराब हो जाने पर उसे काट कर अलग कर देते हैं तथा उसके स्थान पर नया पाइप का टुकड़ा डाल देते हैं (चित्र 4.3)
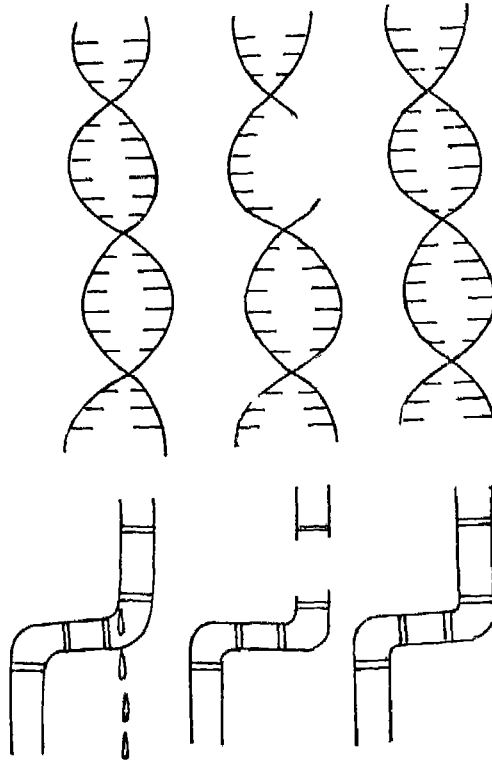
चित्र 4.3—जीन की मरम्मत की तुलना पाइप की मरम्मत से की जा सकती है।

परन्तु यह कार्य इतना आसान नहीं है। किसी कोशिका में एक जीन को बदलना बड़ा कठिन है, लेकिन उस पूरी कोशिका या कुछ कोशिकाओं के समूह को स्वस्थ कोशिकाओं द्वारा बदलना उतना कठिन नहीं है। अतः करते यह हैं कि उस कोशिका को ज्ञात कर लेते हैं जिसमें जीन त्रुटिपूर्ण है। फिर उस कोशिका को बदल दिया जाता है। उदाहरण के रूप में मान लीजिये किसी व्यक्ति में ऐसा रोग प्रकट होता है जिसका कारण यकृत की कोशिकाओं में उपस्थित जीन की गड़बड़ी है। तो यदि यकृत की उन कोशिकाओं के स्थान पर स्वस्थ यकृत की कोशिकाओं को शल्य-चिकित्सा द्वारा लगा दी जाय तो वह रोग ठीक हो सकता है। इस विधि पर काफी कार्य हो रहा है तथा यह आशा की जाती है कि भविष्य में अनेक गंभीर रोगों का इलाज संभव हो जायेगा। कुछ प्रकार के कैंसर का इलाज भी जीन-चिकित्सा विधि से करने का प्रयत्न चल रहा है और कुछ सफलता भी मिली है।

अब दूसरा प्रश्न है, आनुवांशिक रोगों पर विजय प्राप्त करने का। इसको दो प्रकार से करने का प्रयत्न किया जा रहा है। प्रथम तो यह कि यदि किसी माता या पिता में किसी आनुवांशिक-रोग के बारे में मालूम हो जाये तो उनको सन्तान उत्पन्न न करने की सलाह दी जाये। दूसरा तरीका यह भी है कि शुक्राणु या अण्डाणु में रोगी जीन को बदल दिया जाये। यह विधि काफी कठिन प्रतीत होती है, परन्तु विज्ञान के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

ऊपर जैव-तकनीक के कुछ वास्तविक तथा कुछ सम्भावित उपयोगों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इस विषय का विकास बड़ी तेजी से हो रहा है तथा इस तकनीक से मनुष्य जाति को बहुत कुछ मिलने की आशा है।

अब आइये—जरा संक्षेप में इस बात पर भी विचार करे कि क्या

वास्तव में जैव-तकनीक द्वारा फ्रांकेनस्टाइन या भस्मासुर जैसे दानव बनाये जा सकते हैं जो मनुष्यजाति का जीना भी मुश्किल कर दें।

जीन-इंजीनियरिंग की भी कुछ सीमाएं हैं। अभी तक पुनर्योगज-डी.एन.ए. तकनीक द्वारा एक साथ लगभग दस-बारह जीनों पर ही कार्य कर सकते हैं। उससे ज्यादा जीनों को एक साथ पुनर्योगज करना सम्भव नहीं हो पाया है। परंतु यदि हम सादे से सादा सूक्ष्मजीवी भी लें तो उसमें हजारों जीन होते हैं। इन हजारों जीनों को एक साथ पुनर्योगिज करना असम्भव लगता है। इसके अतिरिक्त कोशिका में ये जीन एक ढेर की तरह भरे नहीं रहते अपितु उनका एक निश्चित क्रम होता है। तभी वे सुचारू रूप से कार्य करते हैं। अत: यह सम्भव नहीं कि इस कोशिका में जिसमें हजारों जीन हैं, दो-चार जीन किसी अन्य जीव के डाल दें और एक नया जीव बन जाये। यह भी कुछ उसी तरह हुआ जैसे किसी कबाड़ी की दुकान में से 2-4 पुर्जे उठा कर किसी इंजन में जोड़ दें और यह आशा करें कि एक अधिक बढ़िया इंजन बन जायेगा। अत: ऐसा प्रतीत नहीं होता कि जैव-तकनीक द्वारा हम नये जीवों का निर्माण करने लगेगें या भस्मासुर या फ्रांकेनस्टाइन बनाना सम्भव हो जायेगा।

उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैव-तकनीक विज्ञान का एक नवीनतम चमत्कार है जो मानव-समाज के लिए एक वरदान सिद्ध हो सकता है और उसकी अनेक जरूरतों को आसानी से हल कर सकता है।